R.N.I. No. 2321/57
ओ३म्
रजि. सं. MTR नं. 04/2013-15
नवम्बर 2015
अंक 10

तपोभूमि

मासिक

महर्षि दयानन्द सरस्वती

विष को पीकर अमृत बाँटा। तेरा ऋणी रहे संसार।।

(निर्वाण दिवस दीपावली)

सम्पादकीय

अन्धों के हाथ मशाल, आर्य समाज हुआ बेहाल!

वैदिक धर्म के ह्रास के बाद हजारों वर्षों तक आर्यावर्त्त देश में अज्ञान का साम्राज्य व्याप्त रहा, सारा समाज अज्ञानान्धकार से ग्रसित हो गया, मानव प्रकृति से प्रकाश की आवश्यकता सभी अनुभव करते हैं। इसका लाभ उठाकर अनेक सम्प्रदायों का उदय हो गया। उनके प्रवर्त्तक वैदिक ज्ञान के अभाव में जहाँ-तहाँ से कुछ ज्ञानकण प्राप्त करके सम्प्रदायों को चलाने लगे, उनके सबके कुछ विचार एक से थे और कुछ में काफी विभिन्नता थी इस कारण उनके सबके अनुयायी अपने-अपने मत के प्रति दुराग्रही हो गये और आपस में लड़ने-झगड़ने लगे। एक दूसरे के खून के प्यासे हो गये। कोई मुसलमान, कोई ईसाई, कोई बौद्ध, कोई जैनी, कोई यहूदी, कोई सिख। देखते-देखते सारा मानव समाज जो कभी वैदिक धर्म के झण्डे के नीचे **सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया** का पाठ करता था। वह सम्प्रदायों के द्वारा लगाई गई स्वार्थ की आग में जल उठा। मुगलकाल इसका जीता जागता उदाहरण है। समय का चक्र चला और इस भ्रमित संसार को सत्य पथ दिखाने के लिए परमात्मा ने महर्षि दयानन्द के रूप में एक दिव्य आत्मा को भेजा। उन्होंने भीषण कठिनाइयों का सामना करते हुए पुनः परमात्मा द्वारा प्रदत्त वेदज्ञान को प्राप्त किया और सारे असत्य मत-मतान्तरों की गम्भीर समालोचना करके, शुद्ध सत्यपथ मानव समाज के सामने प्रस्तुत किया। वे थोड़े से समय तक ही संसार का उपकार कर पाये थे कि दुर्भाग्य से दुष्टों के षड़यंत्र के कारण उनका असमय ही देहावसान हो गया, पर वे अपने पीछे संसार को सत्य पथ दिखाने के लिये आर्यसमाज के सुदृढ़ संगठन को बना गये। उनके बाद उनके शिष्यों में स्वामी दयानन्द का दिव्य तेज दमक उठा और उन सबने प्राणों की परवाह किये बगैर अहर्निश वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार के लिए जगह-जगह प्रयास शुरू कर दिये। हजारों आर्यसमाज मन्दिरों की स्थापना देश-विदेश में देखते-देखते ही हो गयी, सैकड़ों गुरुकुल वैदिक पद्धति के प्रारम्भ कर दिये गए, डी.ए.वी. कॉलेजों के जाल बिछा दिये गये। एक समय था कि आर्यसमाज की शिक्षण संस्थाओं का विस्तार सरकार से भी अधिक था। जगह-जगह आयुर्वेद का उद्धार करने के लिए आयुर्वेद विद्यालय खोले गये। उनसे निकले हुए सुयोग्य वैद्यों ने जगह-जगह बैठकर चिकित्सा के द्वारा समाज सेवा शुरु कर दी। जगह-जगह अनाथालय खोले गये, गौशालायें खोलकर गायों का संरक्षण किया गया। वैदिक प्रचारकों ने संगीत और प्रवचनों के माध्यमों से ऐसी जन-जाग्रति की कि समाज में व्याप्त कुरीतियों की जड़ें हिल गयीं। जगह-जगह वैदिक विद्वानों ने सम्प्रदायी लोगों को सत्य का निर्णय करने के लिये ललकारा। और शास्त्रार्थों में उन्हें पराजित कर जनता को उनके जाल से छुड़वाया। पाखण्डों का सत्य सबके सामने प्रकट किया। भारतीय महापुरुषों, ऋषि महर्षियों के ऊपर लगाए गये मूर्खतापूर्ण दोषों को शुद्ध साहित्य लिखकर तर्क पूर्ण ढंग से उनका उज्ज्वल चरित्र सबके सामने रखा। साहित्य का कलुषित रूप अपनी सत्यनिष्ठ लेखनी द्वारा पुनः समाज के सामने पवित्रता से रखा। आर्ष ग्रन्थों का पुनः पठन-पाठन प्रारम्भ किया। इस प्रकार देखा जाये तो महर्षि दयानन्द के बाद की पीढ़ी ने अभूतपूर्व कार्य कर दिखाया। उन सर्वस्व आहुत करने वाले लोगों में पं0 लेखराम, गुरुदत्त विद्यार्थी, स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी दर्शनानन्द, लाला लाजपतराय, महात्मा हंसराज, स्वामी स्वतंत्रतानन्द, गणपति शर्मा आदि अनेकों स्वनामधन्य व्यक्तित्व रहे हैं। अनेकानेक धर्म प्रचारक जिनकी तपस्या को वर्णित करना यहाँ सम्भव नहीं है। उनके तप से ऐसा लगता था कि शीघ्र ही सारा देश पुनः वैदिक धर्म का केन्द्र बन जाएगा। पुनः आर्य साम्राज्य की स्थापना हो जाएगी। पर दुर्भाग्य ये रहा इन त्यागी तपस्वी कर्मठ लोगों के पास इतना समय नहीं था कि वे अपने पीछे इस विशाल कार्य को संभालने के लिए दूसरी पंक्ति के कार्यकर्त्ता तैयार कर सकें। दूसरी पंक्ति के कार्य-कर्त्ताओं के अभाव में उनके द्वारा संस्थापित संगठनों और संस्थाओं को संभालने के लिए उचित उत्तराधिकारी नहीं मिले। परिणामस्वरूप अयोग्य लोगों के

-शेष पृष्ठ संख्या 35 पर

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका

(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–61 संवत्सर 2072 नवम्बर 2015 अंक 10

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादक:
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

नवम्बर 2015

सृष्टि संवत्
1960853116

दयानन्दाब्दः 192

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा
(उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाषः
0565–2406431
मोबा. 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4
दयानन्द दिग्विजयम्	–आचार्य मेधाव्रत	5–8
ईश्वर ने दुनियां क्यों बनाई	–पं0 रामचन्द्र देहलवी	9–11
वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों की....	–उदयनाचार्य	12–14
यह भी जानिये	–रामेन्द्रकुमार आर्य	15–18
जीवन संग्राम में विजय	–स्वामी सोमानन्द महाराज	19–20
पुराणों को किसने बनाया	–डॉ0 श्रीराम आर्य	21–24
स्वावलम्बन		25–27
उपोद्‌घात	–टी.एल.वासवानी	28–30
ब्रह्मचर्य	–पण्डित सत्यव्रत	31–34

❀❀❀

वार्षिक शुल्क 150/– पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये

वेदवाणी

डॉ० रामनाथ वेदालंकार

एक विलक्षण अग्निहोत्र

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे।
वैश्वानरज्येष्ठेभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत्।। अथर्व0 3.21.6

शब्दार्थः–

(उक्षान्नाय) जो उक्षा का अन्न है, (वशान्नाय) जो कमनीय या काम्य गौ का अन्न है, (सोमपृष्ठाय) जो चन्द्रमा तथा सोम औषधि के पृष्ठ में विराजमान है, (वेधसे) जो अनेक लाभों का विधाता है (वैश्वानरज्येष्ठेभ्यः) वैश्वानर जिनमें ज्येष्ठ है (तेभ्यः अग्निभ्यः) उन अग्नियों के लिए (एतत् हुतम् अस्तु) यह आहुति हो।

भावार्थः–

इस मंत्र का सायणाचार्य ने यह अर्थ किया है–''उक्षा अर्थात् सेचनसमर्थ बैल जिसका अन्न है, वशा अर्थात् वन्ध्या गौ जिसका अन्न है, सोम जिसके पृष्ठ पर पड़ता है, वैश्वानर अर्थात् जाठराग्नि जिनमें ज्येष्ठ है, उन अग्नियों के लिए हमारी यह आहुति है।'' इस अर्थ से यह सिद्ध होता है कि साँड और बाँझ गाय की यज्ञ में आहुति डाली जाती है। आइये, इस अर्थ की समीक्षा करें।

सबसे पूर्व इस मन्त्र का प्रकरण देखना चाहिए। सूक्त के अप्रथम दो मन्त्रों का अर्थ इस प्रकार है–''जो अग्नियाँ जलों में हैं, जो अग्नि मेघ में है, पुरुष में है, अश्मा (पाषाण) में है, जो अग्नि औषधियों और वनस्पतियों में प्रविष्ट है, उन अग्नियों को यह आहुति है (1)। जो अग्नि सोम के अन्दर है, गौओं के अन्दर है, जो अग्नि पक्षियों और मृगों में प्रविष्ट है, जो अग्नि द्विपादों और चतुष्पादों में आविष्ट है, उन अग्नियों को यह आहुति है (2)।

इन शब्दों का आशय यह निकलता है कि अग्नि इन सब पदार्थों में निवास करता हुआ इनका उपकार करता है, अन्यथा इन सबके परमाणु बिखर कर इनकी सत्ता ही समाप्त हो जाये। इस प्रकरण के अनुसार 'उक्षान्न' और 'वशान्न' शब्दों का अर्थ भी ऐसा ही होना चाहिए। जिससे यह प्रतीत हो कि अग्नि उक्षा और वशा का उपकार करता है। सायण ने जो अर्थ किया है, उससे तो यह प्रकट होता है कि उक्षा और वशा को खाकर अग्नि उनसे उपकार ग्रहण करता है। 'उक्षान्न' और 'वशान्न' का यह अर्थ किया जाना चाहिए कि जो अग्नि उक्षा और वशा का अन्न है, अर्थात् जिसके सहारे उक्षा और वशा जीवित रहते हैं।

जो अग्नि उक्षा का अन्न है, अर्थात् जिस अग्नितत्व के सहारे बलवान उक्षा जीवित रहता है और जिस अग्नितत्व के सहारे वशा गौ अपनी सत्ता बनाये रखती है, उस अग्नि के लिए हम आहुति देते हैं। यह भी ध्यान देने योग्य है कि 'वशा' वन्ध्या गौ को नहीं कहते हैं। कान्त्यर्थक वश धातु से 'वशा' शब्द बनता है, जिसका अर्थ है कमनीय और कामना करने योग्य। ❀❀❀

गतांक से आगे–

दयानन्द दिग्विजयम्

लेखकः आचार्य मेधाव्रत

द्वादशः सर्गः

तीरोद्याने रवितनयायायात्रिव्रातादृ धृतबहुवित्ताः।
यस्यामूषु र्यतिरुपयातोमत्ता मल्ला इव मथुरां ताम्॥ 54॥

आगरा से चलकर स्वामीजी मथुरा आये। इस नगर में यमुना नदी के तटवर्ती बागों में मस्तमल्ल से चौबे लोग रहा करते हैं और ये लोग यात्रियों से धर्म के नाम पर धन लूटा करते हैं॥ 54॥

आचार्यांघ्रियुगं स सादरं नत्वा हेमपटं पदे न्यधात्।
पंचच्छात्रयुतो व्रतीश्वरो भक्तः शुद्धविराट्परात्मनः॥ 55॥

स्वामीजी के साथ पांच विद्यार्थी थे। यहाँ अपने आचार्य स्वामी विरजानन्द के स्थान पर आकर ईश्वरभक्त स्वामीजी ने आदरसहित आचार्य के चरणों में प्रणाम कर सोने की मुद्राएँ एवं रेशमी वस्त्र भेंट किये॥ 55॥

आचख्यौ निजमखिलं वृत्तं शास्त्रार्थाजिसमयसंवृत्तम्।
श्रुत्वा तन्मुदिततरो जातः शिष्यस्य प्रणवपराचार्यः॥ 56॥

स्वामीजी विरजानन्दजी को दयानन्दजी ने अपने शास्त्रार्थ–संग्राम का सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। प्रणव जप–परायण आचार्य शिष्य की बातें सुन अति प्रसन्न हुए॥ 56॥

स शिवाशिषा निजविनेयममलचरितं गुणोज्ज्वलम्।
पुलकिततनुरभिनन्द्य गुरुर्ललितं मनीषितमंस्त पूरितम्॥ 57॥

रोमांचित शरीरवाले गुरु ने पवित्र–चरित्र, गुणोज्वल अपने शिष्य को मंगलमय आशीर्वाद से अभिनन्दन दिया और अपनी श्रेष्ठ अभिलाषाओं को पूर्ण हुई मानी॥ 57॥

गुरुचरणारविन्दयुगसेवनशुद्धमनाः श्रुतिगतसंशयान्निगमविद्गुरुतो नुनुदे।
अतिथवाङ्मुनिः श्रुतिमतप्रथनोत्सुकधीर्गुरुवरसम्मतिं स गमनार्थवाप ततः॥ 58॥

गुरु–चरणारविन्द के सेवन से पवित्रित हृदय, वेदवेत्ता दयानन्द ने कुछ एक वैदिक शंकाओं का आचार्य से निरसन किया। पश्चात् सत्यवक्ता मुनीन्द्र ने वैदिक धर्म प्रसार के लिये उत्कण्ठित होकर जाने के लिये गुरुदेव से आज्ञा मांगी॥ 58॥

अतुलमतिपुटेऽलं पुण्यशीलः श्रुतममृतमिवार्य तीर्थवर्यात्।
विनयविनतमूर्द्धाऽऽदाय शिष्यः ललितकरपुटोऽयाद् भद्रकामः।। 59।।

पुण्यशील, भद्रकाम शिष्य ने अपने अनुपम मतिरूपी दोने में, वेदामृत पानकर विनय से नतमस्तक हो दोनों हाथ जोड़कर गुरुवर्य से विदाई ली॥ 59॥

निजगुरुविरहभवैः खेदैर्विकलितमृदुलहृदो नूनम्।
निपतितममलदृशोऽस्रु स्राक् सुममिव पवनहतं वृन्तात्।। 60।।

सचमुच स्वामीजी का कोमल हृदय अपने आचार्य के वियोगजन्य दुःख से व्याकुल हो उठा और उनकी पवित्र आंखों से जल्दी ही आँसू के दो बूंद टपक पड़े; जैसे पवन से आहत होकर उण्ठल से फूल गिर पड़ते हैं॥ 60॥

दण्डीन्द्रस्य विवर्द्धमानविसयाऽसौ विपुलं वपुषि विलोक्य दुर्बलत्वम्।
गुरुपरिचरणमना इतरनगरगमनं हृदयनिहितनिशितशरं ननु मेने।। 61।।

उन दिनों स्वामी विरजानन्दजी का शरीर अतिवृद्धत्व के कारण दुर्बल होता जा रहा था। इसलिये गुरुदेव की सेवा की इच्छावाले स्वामी दयानन्द को मथुरा से दूसरी जगह जाना हृदय में लगे तीक्ष्ण बाण की तरह मालूम हुआ॥ 61॥

आचार्याज्ञां शीर्षे धृत्वा धर्मोद्धारायेतो यातः।
विद्युन्मालालीलान् भावान् कर्मन्दीन्द्रो मत्वा सर्वान्।। 62।।

आचार्य की आज्ञा शिरोधार्य करके और सब पदार्थों को बिजली के समान चंचल लीला वाले समझकर संन्यासी प्रवर दयानन्द वैदिक धर्मोद्धार के लिये निकल पड़े॥ 62॥

चित्रपदार्थमनोज्ञं मेरठपत्तनमायात्।
चित्रपदाचिंतवाणीमोहितकोविद आर्यः।। 63।।

विविध अलंकारयुक्त वाणी से विद्वानों को मुग्ध करनेवाले आर्यसंन्यासी, विविध वस्तुओं से मनोहर मेरठ नगरी में आ गये॥ 63॥

विदिताक्षरामलहृदो यमिनः परिषज्जुषां सुविदुषां हृदयम्।
प्रमिताक्षराऽपि बहुभावमयी शिववाग् जहार मधुरा मृदुला।। 64।।

ब्रह्मज्ञान से पवित्र-हृदय, संयमी स्वामी जी की कल्याणमयी वाणी, अल्पाक्षरा होती हुई भी विपुलभाव भरी, मधुरा तथा मृदुला होने से सभा के विद्वानों के हृदयों को हर लेती थी॥ 64॥

उत्तरासंगमंगेऽधुना प्रावृणोदन्तरीयं पदाम्भोजयुग्मे दधौ।
कम्बुरम्यां चकारात्मधीः कंधरां सुप्रभासुन्दरस्फाटिकस्रग्विणीम्।। 65।।

इस समय आत्मदर्शी दयानन्दजी ने शरीर पर दुशाला ओढ़ रक्खा था, पैरों में मोजे थे और शंख सदृश गले में चमकती स्फटिक मणियों की मनोहर माला थी॥ 65॥

गंगारामोऽभूत्सुयशसि महितः प्राज्ञोयोगी तं प्रोचे वितरतु मम साहाय्यम्।
गोरक्षायां सन् कृषिरतिफलदात्री स्याद् येनासंबाधा क्रतुकृतिरनिशं पुण्या।। 66।।

गंगाराम नाम के एक बड़े सुविख्यात पण्डित थे। स्वामीजी ने इनसे कहा कि–आप गौरक्षा के कार्य में हमें कुछ सहायता कीजिये, जिससे कृषि फलवती हो और बिना विघ्न के यज्ञ योगादि पुण्य कार्य निरन्तर संपादित होते रहें॥ 66॥

बहुराजसंगतसभासु सकलसुखदां पयस्विनीम्।
रक्षितुमभिवचनं प्रददौ नृपपंक्तिरार्यहृदया कुलोद्गता।। 67।।

स्वामीजी को समय-समय पर कतिपय-आर्य-संस्कृति के अभिमानी राजाओं ने राजसभाओं में सकल सुखदायिनी गौ की रक्षा का वचन दिया था॥ 67॥

यदि नरपतिमाला सोत्कण्ठया भवति विमलकार्ये साहाय्यकृत।
वयमपि मुनिहंसोद्युक्ता मुदा जगति पशुवधं रोद्धुं सन्ततम्।। 68।।

यहीं बातें स्वामीजी ने पं. गंगारामजी से भी कहीं थीं। गंगाराम ने स्वामीजी से कहा कि–हे मुनिराजहंस, यदि राजा लोग सहर्ष गोवशं की रक्षा के लिये सहायता के वचन दे चुके हैं तो मैं भी आनन्दपूर्वक संसार में पशुवध रोकने के लिये निरन्तर यत्न करता रहूँगा॥ 68॥

गंगारामेण पृष्टः प्रमुदितमनसोद्दिश्य भस्माभ्रकं सब्रह्मानन्दब्धिहंसो विमलगुणमणिस्रग्धरार्यावतंसः।
कृष्णे भस्माभ्रकं तन्निजनिकटगतं दर्शयामास कृत्स्नं दत्तं तस्मै यथेष्टं स्थविरजनतनौ यौवनौजः प्रदायि।। 69।।

ब्रह्मानन्द-सरोवर के हंस, विमलगुणमणिमाला को धारण करनेवाले आर्यावर्तस ऋषि दयानन्द से पं0 गंगाराम ने पूछा कि आप भस्म भी रखते हैं? तब स्वामीजी ने अपने पास के कृष्णभ्रक भस्म को दिखलाया और कहा कि–यदि आप की इच्छा हो तो इच्छानुकूल ले लीजिये। यह भस्म बूढ़ों को भी नवयौवन प्रदान करता है॥ 69॥

कामं कामेन्धनं तत्कथमजयदहो योगीन्द्र! मदनं जगधं दिव्यौषधं द्राङ् मदयति हृदयं सन्नित्युदगृणात्।
कुर्यादिकान्तवासं प्रणवरतमना नृत्याद्यनुचितं दृश्यं पश्येन्न धीमानपि न च मनसा ध्येया सुवदना।। 70।।

"हे योगीन्द्र! यह दिव्यौषधि तो खूब ही कामोद्दीपक है। इसके सेवन से तो मन मदयुक्त हो जाता है और उस अवस्था में काम को जीतना कठिन हो जाता है, तो आपने कैसे काम को जीत लिया?" स्वामीजी ने कहा कि काम को जीतने के लिये बुद्धिमानों को चाहिये कि एकान्तवास में रहकर ओंकार का जाप किया करें, नृत्यादि अनुचित दृश्य और कामोद्दीपक गीत आदि से बचता रहे और मन से भी सुवदना का ध्यान न करें॥ 70॥

पुण्यविरोधकनिन्द्यनिनादं चंचलमानसदोधकशीलम्।
अन्यकलत्रविलोकनमोहं संयमिजीवनभृत्तु विमुंचते।। 71।।

संयमी जीवनजीवी को अपवित्र निन्दनीय शब्दों का उच्चारण नहीं करना चाहिये। चंचल मन को

और भी उत्तेजित करनेवाले पर-स्त्री दर्शन का मोह छोड़ देना चाहिये॥ 71॥

भुजंगप्रयातोपमै र्दुश्चरित्रैस्त्येजेत्संगतं सन्ततं दम्भिमित्रैः।
पवित्रैरुदाराशयै र्ब्रह्मविज्ञैर्विदध्याद्धितेच्छु र्मनो जेतुकामः॥ 72॥

वह, सर्प के समान कुटिलगति, दुश्चरित्र दम्भी मित्रों की संगति से सर्वदा पृथक् रहे और पवित्र, उदाराशय, ब्रह्मज्ञानी जगद् हितेच्छु संतों की संगति करे॥ 72॥

स्वापतोऽधिकात्तु मंगलानमंगलान् विलोकयेन्नृचन्द्र! गोचराननारतं ततो दिवानिशं तदोंउपदं जपन्नु। संविशेत्सुनिद्रयावृतोऽथ जागृतो निषद्य भद्रकारि, भक्तितः पुनर्जपेत्स वृत्तमस्त्यदः प्रशस्तमित्यगादि॥ 73॥

मनुष्यों को अधिक निद्रा से मंगल और अमंगल स्वप्न दीखते हैं। इसलिये रात्रिदिवा ओंकार के जप में लीन रहे। ओंकार-जप करते जब नींद आ जाय तब सो जाय, और फिर जागते ही पुनः भक्ति से कल्याणकारी प्रणव का जप करे। हे नरश्रेष्ठ! ऐसा ही आचरण मनुष्य के लिये अति प्रशस्त है॥ 73॥

मन्मथवासनां जयति योभवाम्बुधिजयातनापरिचितः, पावनभक्तिपूर्णहृदयोजितेन्द्रियतया परेशनिरतः। मद्रकतीर्थमन्त्रजपनैरनन्तसुखबोधजातपुलकोमुक्तिपदं स मृत्युविजयी मुनीश्वर इवाप्नुयात् सुकृतवान्॥ 74॥

जो मनुष्य संसारकी यातनाओं से परिचित है, जिस का हृदय भगवान् की पवित्र भक्ति से लबालब भरा है, जो जितेन्द्रिय बनकर परमेश्वर में तल्लीन है, जिसे हर्षदायक गुरुमंत्र के जप से अनन्त सुखानुभव के कारण रोमांच हो जाते हैं, वही मनुष्य पुण्यशाली ऋषि की तरह कामवासना को जीतकर मृत्युंजयी होता है, और मुक्ति का पद पा लेता है॥ 74॥

अनिलविकम्पितोर्मितरलं निभालयति जीवनं तनुजुषां वपुरपि हीयमानमनिशं जरामहिलया वशीकृतमिदम्। सपदि निपीडनव्यतिकरं यमादिव नराधिपान्नरपशुः परललनां विलोक्य तनुते तथापि हतबुद्धिरश्वललितम्॥ 75॥

मनुष्य हमेशा ही पवन से कम्पित तरंग के समान चंचल मानव-जीवन को देखा करता है। और वह इस शरीर को भी जरादेवी के वशीभूत होकर क्षीण होता हुआ देखा ही करता है, शरीर पर नित्यशः मृत्युराज का आक्रमण भी सहसा होते हुए देखता है। तो भी हतबुद्धि यह नरपशु परस्त्री को देखकर अश्वलीला करता है॥ 75॥

ब्रह्मचर्यपालनेन देहचारुतां य एति।
तत्समानतां बले नु कः करोतु निर्जरोऽपि॥ 76॥

जो मनुष्य ब्रह्मचर्य के पालन से शरीर को सुन्दर और सुडौल बनाता है, क्या कोई देवता भी बल में उसकी समानता कर सकता है॥ 76॥

शरीरमानसात्मनां पराक्रमे मतौ बले।
मुनेः प्रमाणवेदने न कोऽप्यलं सुरेष्वहो॥ 77॥

शारीरिक, मानसिक और आत्मिक पराक्रम एवं बुद्धिबल में मुनिवर दयानन्द का परिमाण जानने के लिये देवों में भी कोई समर्थ नहीं है॥ 77॥

-(शेष अगले अंक में)

गतांक से आगे–

ईश्वर ने दुनियां क्यों बनाई?

लेखकः पं० रामचन्द्र देहलवी

मैंने कहा–'**कुदरत का इतना बेजा इस्तेमाल कि आपकी बिना कारण टांगें ले लीं और दूसरों को दे दीं।**'

मैंने आगे कहा– **"It is excellent to have a giant's strength but it is tyranous to use it like a giant (इट इज एक्सीलेंट टु हैव ए जाइन्ट्स स्ट्रैन्थ, बट इट इज टायरेन्स टु यूज इट लाइक ए जाइन्ट) किसी में दानव जैसा शारीरिक बल हो तो वह अच्छी बात है किन्तु उसको दानव की तरह प्रयोग में लाए यह जालिमाना बात है।**

खुदा अगर कादिरे मुत्तलक है तो इसलिये कि आपकी या किसी की भी टांगें बिना मतलब छीन ले? अच्छा अब आप सच–सच यह बताइये कि आपका दिल क्या कहता है?"

मियाँजी ने जवाब दिया कि–**"हाँ दिल तो कहता है कि कोई न कोई कारण तो जरूर है जो मुझे टांगें न मिलीं और दूसरों को मिल गईं मैंने जरूर कोई गलती की होगी।"**

तो मैंने कहा कि–**"देखिये धर्म तो कहता है कि खुदा कादिरे मुत्तलक है वह जो चाहे सो करे और दिल जो खुदा का बनाया हुआ है वह यह कहता है कि नहीं कोई न कोई वजह जरूर होनी चाहिये।"**

इससे यह साबित हुआ कि मजहब खुदा का बनाया हुआ नहीं है और दिल खुदा का बनाया हुआ है। क्योंकि आपने सच्ची बात कही है और आप समझ गये हैं तथा आपने मजहब की बात की गलती भी पहचान ली है इसलिये मैं आपको इकन्नी देता हूँ।

मैं यही अर्ज करना चाहता हूँ कि हमें अच्छी प्रकार से समझ लेना चाहिये कि '**भगवान जो कुछ करता है वह हमारे कर्मों का ही फल होता है और मनुष्य जाति के भले के लिये ही होता है।**' कई बार ना समझी और अदूरदर्शिता के कारण बच्चे अपने माँ–बाप के कार्यों से रुष्ट हो जाते हैं और उनकी आज्ञाओं के पालन में चूँ चरा करते हैं।

एक बाबू गौरीशंकर जी थे। दिल्ली में रहते थे और लाटसाहब के दफ्तर में काम करते थे। वह अपने डिपार्टमेंट में सुपरिंटेंन्डेन्ट थे। बहुत अच्छे आदमी थे। वह शुद्धि सभा में भी काम करते थे। वे मेरे घर पर भी आया करते थे और जब–तब अपनी शंकाओं का समाधान भी किया करते थे।

एक बार उन्होंने मुझसे कहा कि **"पण्डितजी एक सवाल है। बड़े दिनों से दिमाग में घूम रहा है उसका समाधान होना चाहिये।"**

मैंने कहा– **"फरमाइये क्या प्रश्न है? प्रश्न का उत्तर यदि आता होगा तो दे दूंगा।"**

उन्होंने कहा कि– **"मैं समझता हूँ कि भगवान् हमारी इच्छाओं को पूरा करने में पूरी तरह नाकामयाब रहा है। क्योंकि हम बहुत सी इच्छायें रखते हैं और हमारी मन की मन में ही रह जाती है। हम भगवान से अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये प्रार्थना भी करते हैं। पर फिर भी यह पूरी नहीं होती। तो क्या मैं इस आधार पर यह नहीं कह सकता हूँ कि भगवान् हमारी इच्छायें पूरी करने में Miserably fail हो गया है।"**

ये उनके शब्द थे कि– **'वह हमारी इच्छाएं पूरी करने में बुरी तरह नाकामयाब रहा है।'**

प्रश्न मैंने सुन लिया और इसके बाद मैंने कहा कि–मान लीजिये आप बाजार जा रहे हैं। आपका बच्चा आपकी अंगुली पकड़ कर आपके साथ जा रहा है। उसने बाजार में कलमी बड़े देखे। कलमी बड़े बहुत जायकेदार होते हैं किन्तु तेल में बनाये जाते हैं। बच्चे ने आपसे कलमी बड़े दिलवाने के लिये कहा। आपने उसको मना कर दिया और कहा कि तुझे कूकरखांसी **Hooping cough** है। यह बड़े तेल के हैं तुझे नुकसान करेंगे। इसलिये यह नहीं लेने। बच्चा चुप हो गया। आप थोड़ा और आगे बढ़े।

लेकिन बच्चा पीछे की ओर देखता ही चल रहा है। आपसे फिर बोला पिताजी दो पैसे के तो दिलवा दो! आपको जरा गुस्सा आया, कड़ककर कहा–नहीं लेने। बेवकूफ इतनी बार समझाया, तेरी समझ में नहीं आया? खांसी हो रही है यह नहीं खाने। बच्चा फिर चुप हो गया।

आपका एक मित्र बाजार में मिल गया। आप उससे बातें करने लगे। बच्चा बातों के बीच में फिर बोल उठा पिताजी दिलवा दो ना! आपको बहुत गुस्सा आया। आपने बच्चे को एक चांटा रसीद कर दिया और कहा कि तुझे नुकसान करेंगे। बच्चा बिल्कुल चुप हो गया। और साथ ही कुछ नाराज भी हो गया। आप घर आ गये।

बच्चा घर आते ही बाहर निकल गया। उसने मुहल्ले के बच्चों को इकट्ठा किया उनकी एक सभा की और आपबीती सुनाई। सभी बच्चों ने भी अपनी–2 बातें सुनाई और कहा कि हां बात बिल्कुल ठीक है कि हमारे मां बाप हमारी इच्छाओं के पूरा करने में पूरी तरह नाकामयाब हुए हैं।

सभी ने एक मत होकर एक प्रस्ताव पारित किया और उसकी एक–एक प्रति सभी माँ–बाप के पास भेज दी कि–**"आप लोग हमारी इच्छाएं पूरा करने में Miserably fail हुए हैं। आपके पास भी एक प्रति उस प्रस्ताव की आई। आपने उसे पढ़ा। पढ़कर रद्दी की टोकरी में डाल दिया। मैंने पूछा कहिये उसे रद्दी की टोकरी में डालेंगे कि नहीं? उत्तर मिला डालेंगे।"**

तो वे मुस्कराकर कहने लगे कि–**"क्या भगवान् के सामने ऐसी ही मांगे रखते हैं?"**

मैंने कहा– **'हां, वह यह जानता है कि अमुक मांग बेवकूफाना है इसलिये वह पूरी नहीं होती चाहे हम हजार प्रार्थना करते हैं। वे उचित होंगी तो ही पूरी होंगी, वर्ना नहीं।"**

जब मां–बाप ही हमारी सभी इच्छाएं पूरी नहीं करते तो ईश्वर जो सर्वज्ञ है वह हमारी कोई भी

अनुचित माँग कैसे पूरी कर देगा?

ईश्वर से आप मांगते जाइये। केवल आपकी वे ही मांगें पूरी होंगी जो उचित हैं। तो ईश्वर के बारे में कोई निर्णय तुरन्त या बिना सोचे समझे दे देना उसका अपमान करना है। ऐसे नहीं कहना चाहिये बल्कि यों कहना चाहिये कि उसने हमें इस योग्य नहीं समझा कि हमारी सभी इच्छायें पूरी की जायें। सभी इच्छायें सबकी कैसे पूरी की जा सकती हैं?

हजारों लोग अनेक दफ्तरों में नौकरी प्राप्त करने के लिये प्रार्थना पत्र देते हैं, क्या सभी रख लिये जाते हैं? नहीं न! वहां पर लोग अपनी तरफ से क्या कुछ कसर बाकी छोड़ते हैं? अरे भाई! पागल हो जाते हैं इतनी कोशिशें करते हैं और अन्त में कह भी देते हैं, साहब! बहुत कोशिश करते हैं लेकिन नौकरी मिलती ही कहाँ है?

खैर! यहां तो चुनाव में न आने के और भी बहुत से कारण हो सकते हैं किन्तु वहां तो केवल एक ही कारण है और वह है **"जीवात्मा की अयोग्यता।"** ❁❁❁

महापुरुषों की जयन्ती

भाई परमानन्द	4 नवम्बर
चित रंजनदास	5 नवम्बर
विपिन चन्द्रपाल	7 नवम्बर
सुरेन्द्रनाथ बनर्जी	10 नवम्बर
जवाहरलाल नेहरू	14 नवम्बर
इन्दिरा गांधी	19 नवम्बर
रानी लक्ष्मीबाई	19 नवम्बर
वीरांगना झलकारीबाई	22 नवम्बर
पट्टामी सीतारमैया	24 नवम्बर
गुरूनानक	25 नवम्बर

महापुरुषों की पुण्यतिथि

महर्षि दयानन्द	5 नवम्बर
विनोबा भावे	15 नवम्बर
महात्मा हंसराज	15 नवम्बर
शहीद करतारसिंह	16 नवम्बर
लाला लाजपतराय	17 नवम्बर
वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र बसु	23 नवम्बर
गुरु तेगबहादुर	24 नवम्बर
महात्मा ज्योतिबा फुले	28 नवम्बर

❁

नवम्बर माह के पर्व

दीपावली 11 नवम्बर
गोवर्धन 12 नवम्बर
भाई दौज 13 नवम्बर

सत्य प्रकाशन के पुनः प्रकाशित उपलब्ध प्रकाशन

वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	मूल्य 40)
यज्ञमय जीवन	मूल्य 30)
मील का पत्थर	मूल्य 20)
भ्रांति दर्शन	मूल्य 20)
बाल सत्यार्थ प्रकाश	मूल्य 30)

गतांक से आगे–

वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों की वैदिकता एवं प्राचीनता

लेखकः उदयनाचार्य, निगम-नीडम्, पिडिचेड, गज्वेल, मेदक, तेलंगाणा

उपरि वचनों से स्पष्ट है कि वैदिक काल में इन दोनों आश्रमों का अस्तित्व ही नहीं, अपितु प्रचलन भी था। यही परम्परा आगे भी चलती रही है। इसके दिग्दर्शन के लिए कुछ निदर्शन मात्र यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

"**वानप्रस्थेन धर्मेण स तेषां भोजनं ददौ**" (रामा. आरण्य. 12.27) एवं च सीता के अपहरण के रावण एक (बहुदक) संन्यासी की वेश-भूषा में आया था (रामा. आरण्य. 46.2, 3)। इससे स्पष्ट है कि रामायण के काल में वानप्रस्थाश्रम एवं यष्टि, कमण्डलु, काषायवस्त्रों के धारण के रूप संन्यासाश्रम की प्रसिद्धि थी। बृहदारण्यक उपनिषद् में आगत याज्ञवल्क्य का प्रसंग प्रसिद्ध ही है कि ऋषि याज्ञवल्क्य मैत्रेयी से कहते हैं कि-"मैं इस गृहाश्रम को छोड़कर संन्यासाश्रम में जाने वाला हूँ" (उद्यास्यन् प्रव्रजिष्यन्-बृ. उ. 2.4.1 ; 4. 5.2)। अपि च "**एतमेव प्रव्रजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति**" (बृ. उ. 4.4.22)। राजा ययाति ने अपने पुत्र पुरु को राजा बनाकर स्वयं वानप्रस्थाश्रम का ग्रहण किया था (म. भा. आदि. 86.1; अपि च द्र. आदिपर्व 86.12 -17; 75.78)। श्रीकृष्ण के स्वर्गवास के पश्चात् उनकी स्त्री सत्यभामा आदियों ने वन में जाकर वानप्रस्थ जीवन बिताया था (म. भा. मौशलपर्व 7.74)। वैसे ही पाण्डु की मृत्यु के उपरान्त सत्यवती अपनी दो पुत्रवधुओं के साथ वन में जाकर तपोमय जीवन बिताती रही है अर्थात् वानप्रस्थदीक्षा ली थी। युद्ध के उपरान्त राजा धृतराष्ट्र भी अपनी स्त्री गान्धारी के साथ वनाश्रम में रहने लगे थे। "**यथा-ब्राह्मणाः परिव्राजका ब्रह्मचारिणश्च निर्गच्छन्तीति.....**" (शाबरभाष्य-मीमांसा. 12. 4.1), **धर्मभेदात् संज्ञाव्यवस्था। यथा-ब्राह्मणः परिव्राट्, वानप्रस्थः**" (शाबरभाष्य-मीमांसा. 8.2.24)। यहाँ स्पष्ट रूप से शबर स्वामी ने नामतः इन दोनों आश्रमों का उल्लेख किया है और परिव्राट् आदि संज्ञाविशेष धर्मभेद के कारण से हैं, ऐसा कहकर गृहाश्रमधर्म के पश्चात् अग्रिम आश्रमधर्मों को स्वीकार करने की परम्परा को भी द्योतित किया है।

"**त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमः। तप एवं द्वितीयः। ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी तृतीयः सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति। ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति**" (छा. उप. 2.23.1)। यहाँ क्रमशः गृहस्थ, वानप्रस्थ, ब्रह्मचर्य एवं संन्यास आश्रमों का वर्णन है। साथ ही आश्रमधर्मों का प्रयोजन अमृतत्व की प्राप्ति भी बताई गई है। वेदान्तसूत्रकार ने पूर्वपक्ष (3.4.18) का निराकरण कर वानप्रस्थादि आश्रामान्तर अनुष्ठेय हैं, ऐसा लिखा है "**अनुष्ठेयं बादरायणः साम्यश्रुतेः**" (3.4.19)।

शतपथ ब्राह्मण (13.6.1.1; 13.6.2. 20) में कहा गया है-सब भूतों का अतिक्रमण करके सबसे

ऊपर स्थित होने (मोक्ष) की कामना से किये जाने वाले पुरुषमेध याग' के अनन्तर उत्सृष्ट यष्टा पुरुष आत्मा में अग्नियों का समारोपण और सूर्य का उपस्थान कर अरण्य में चले जावें = संन्यास लेवें।

तपः प्रभावाद् देवप्रसादाच्च ब्रह्म ह श्वेताश्वतरोऽथ विद्वान्।
अत्याश्रमिभ्य परमं पवित्रं प्रोवाच सम्यगृषिसंघजुष्टम्।। -(श्वे. उप. 6.21)

अर्थात् तप के प्रभाव से और देवों के प्रसाद से विद्वान् श्वेताश्वतर ने अत्याश्रमी = श्रेष्ठाश्रमी संन्यासियों को ऋषिसंघ से सेवित परम पवित्र ब्रह्म का उपदेश भलीभांति किया। यहाँ भी संन्यासियों का वर्णन है और उन्हें अत्याश्रमी, श्रेष्ठाश्रमी, उत्तमाश्रमी कहा गया है। इस आश्रम को उत्तमाश्रम इसलिये कहा गया कि तीन आश्रमों की अपेक्षा इसी आश्रम में मोक्ष के लिये अधिक प्रयत्न करने का अवसर मिलता है। अतएव संन्यासी को 'यति' कहा जाता है। इसीलिए इस आश्रम को मोक्षाश्रम, योगाश्रम, परमाश्रम, अवधूताश्रम, ब्रह्माश्रम इत्यादि नाम हैं।

अब आश्रमधर्मानुष्ठान का प्रयोजन बताता हूँ। क्योंकि "**प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते**" अर्थात् किसी भी कर्म में प्रयोजन के बिना मूर्ख भी प्रवृत्त नहीं होता है।

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्वाः।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले, परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे।।
(मुण्डकोप. 3.2.6, नारा. उप. 12.3, कैवल्योप. 3)

जो वेदान्त विज्ञान से जीवन के लक्ष्य को निश्चितरूप से जान गये हैं, जो संसार में संन्यास (वैराग्य) और योग से यति हो गये हैं, जो शुद्धान्तःकरण वाले हैं, वे परान्तकाल में सभी बन्धनों से मुक्त होकर परम अमृत को प्राप्त करते हैं। यहाँ स्पष्ट है-परम तपोमयरूपी सभी आश्रम धर्मों का यथावत् पालन करते हुये मुक्ति व परम-अमृत को प्राप्त करें। अतः आश्रमधर्मों का प्रयोजन मोक्ष है। यही प्रयोजन बौधायनधर्मसूत्र में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है-"**आत्मानमात्मनः आश्रमादाश्रममुपनीय ब्रह्मपूतो भवतीति विज्ञायते। पंच वा एतेऽग्नयः आत्मस्थाः। आत्मन्येव जुहोति। स एष आत्मयज्ञ आत्मनिष्ठ आत्मश्रेष्ठः आत्मनं क्षेमं नयतीति विज्ञायते। एवंव्रतः ब्रह्मभूयाय कल्पत इति होवाच प्रजापतिः**" (बौ. ध. सू. 2.10.15, 47-49, 71)। तथा च "**अथ परिव्राड् विवर्णवासा मुण्डोऽपरिग्रहः शुचिरद्रोहि भैक्षाणो ब्रह्मभूयाय भवति**" (जाबालोप. 5)। महर्षि दयानन्द ने भी कहा है-"**गृहाश्रमधीना एव सर्व आश्रमास्ते वेदोक्तसद्व्यवहारेण सेविताः सन्तोऽभ्युदयनिः श्रेयससुखसम्पत्तये भवन्त्येवः**" (यजु. 8.3 का भाष्य)। यहाँ महर्षि ने विस्पष्ट शब्दों में चारों आश्रमों का प्रयोजन अभ्युदय निःश्रेयस की प्राप्ति बतायी ही है, साथ में सभी आश्रमों को वेदोक्त अर्थात् वैदिक भी माना है। ऐसे भी स्वामीजी ने अनेकत्र लिखा है। अब यहाँ भी विचार करना अनावश्यक नहीं है कि ये आश्रम-धर्म मोक्ष के साक्षात प्रयोजक (साधक) हैं वा परम्परया? इसका समाधान तत्वमुक्ताकलापकार श्रीवेदान्तदेशिक देते हैं-

स्वान्तध्वान्तप्रसूतं दुरितमपनुदन् योगिनः सत्वशुद्धयै:।
सर्वो वर्णादिधर्मः शमदममुखवत् सन्निपत्योपकारी।। -(जीवसर: 33)

योगियों के शम, दम और वैराग्यादि के समान सभी वर्णाश्रमधर्म स्वान्त:करण के तम वा अज्ञान से उत्पन्न दुरित = अशुद्धि का निवारक होने से अन्त:करण के नैर्मल्य द्वारा मुक्ति के सन्निपत्योपकारक हैं अर्थात् मोक्ष के साक्षात् साधनभूत तत्त्वज्ञान के निष्पादक हैं। स्पष्ट है कि मनुष्यमात्र का परमलक्ष्यभूत मोक्ष का जनक तत्त्वज्ञान ही इन वर्णाश्रमधर्मों का प्रयोजन है। अत: ये धर्म सभी आत्मा के शुभेच्छुकों व मुमुक्षुओं के द्वारा अवश्य ही अनुष्ठेय हैं, अनुसरणीय हैं। इसीलिए श्रीवेदान्तदेशिक ने जीवसर के श्लोक 38 में इन वर्णाश्रमों को नित्यकर्म माना है। अर्थात् वे अवश्य ही कर्तव्य हैं, अन्य कोई विकल्प नहीं है। जैसे-सन्ध्या, अग्निहोत्रादि। अत: ये वर्णाश्रमधर्म सभी वेदभक्तों, आस्तिकों के द्वारा अनुष्ठेय हैं। इनके अनुष्ठान से, त्याग से जो हानियाँ व प्रत्यवाय होता है, उसे बताने की आवश्यकता नहीं है, भुगता हुआ समाज सबके सामने प्रत्यक्ष है। पुनरपि भागवत् के कुछ शब्द दोहराना चाहता हूँ।

"यस्त्वासक्तमतिर्गेहे पुत्रवित्तैषणातुरः।
स्त्रैणः कृपणधीर्मूढो ममाहमिति वध्यते।।
अहो मे पितरौ वृद्धौ भार्या बालात्मजात्मजः।
अनाथा मामृते दीनाः कथं जीवन्ति दुःखिताः।
एवं गृहाशयाक्षिप्तहृदयो मूढधीरयम्।।
अतृप्तस्ताननुध्यायन् मृतोऽन्धं विशते तमः।।" (भा.पु. 11.17.56-58)

जो व्यक्ति, पुत्र, वित्त और लोक के एषणाओं से युक्त है, जो घर, स्त्री, आदि में ममत्व रखने वाला है, वह मूढ़ इस संसारमें बंध जाता है। अहो! मेरे बिना मेरे ये वृद्ध माता-पिता, पत्नी, पुत्र, पौत्रादि अनाथ, दीन और दु:खित हो जायेगें, ये लोग कैसे जियेंगे मेरे बिना। इस प्रकार उनका ध्यान करता हुआ, अतृप्त, गेहाशापाशाबद्ध वह मूढ़धी मरकर घोर अन्धकार में गिर जाता है। अस्तु, इस संसार को प्राचीन वैदिक संस्कृति की ओर कभी न कभी लौटना ही पड़ेगा। इसमें कोई संशय ही नहीं है। ❁❁❁

पाठकों से नम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका के उन पाठकों से निवेदन है जिन्होंने वर्ष 2014 का शुल्क अभी तक जमा नहीं कराया है वे वर्ष 2015 के वार्षिक शुल्क के साथ शीघ्र ही **'सत्य प्रकाशन'** कार्यालय को भेजकर जमा करायें ताकि पत्रिका व विशेषांक सुचारू रूप से आपको प्राप्त होते रहें।

-व्यवस्थापक

सत्साहित्य का प्रचार-प्रसार राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।

गतांक से आगे–

यह भी जानिये

संकलनकर्त्ता:– रामेन्द्रकुमार आर्य

(43) ईश्वर का अवतार नहीं होता अवतारवाद वैष्णव मत की एक कल्पना है राम ईश्वर के अवतार नहीं परमात्मा नहीं धर्मात्मा थे। जब पाप बढ़ेगा तब ईश्वर दुष्टों का संहार करके सज्जनों की रक्षा करेगा ऐसी कल्पना मानकर भारतीय दब्बू, आलसी, निठल्ले, अकर्मण्य व कायर बने अंध–विश्वासी कथाएं, जागरण व कल्पित ईश्वर के प्रचार से राष्ट्र की रीढ़ युवा वर्ग ईश्वर और धर्म से उदासीन होकर नास्तिकता का प्रचार आरम्भ किया।

(44) देश का दुश्मन अन्यायी राजा, धर्म का दुश्मन नशेबाज साधु, सन्तान का दुश्मन मूर्ख माता–पिता, चोर का दुश्मन चन्द्रमा, रोगी का दुश्मन अधकचरा वैद्य, जोंक का दुश्मन नमक, व्यभिचारिणी का दुश्मन पति, बुद्धि का दुश्मन मदिरा, उल्लू का दुश्मन प्रकाश, भिखारी का दुश्मन लोभी, उपदेशक का दुश्मन मूर्ख, तृण का दुश्मन आग, तारकोल का दुश्मन मिट्टी का तेल, रबर का दुश्मन नेपता, गृहस्थ का दुश्मन सुन्दर पत्नी, पुत्र का दुश्मन ऋणकर्ता पिता, खेती का दुश्मन सत्यानाशी, पौधों का दुश्मन बकरी, किसान का दुश्मन साहूकार व ढोंगी पुरोहित, प्राथमिक शिक्षा का दुश्मन मध्यान्ह भोजन योजना, मत–मतान्तरों का दुश्मन आर्यसमाज तथा आलस्य व अज्ञान सबका दुश्मन है।

(45) भोजन करने से पहले जठराग्नि का मुख खुल जाता है भोजन के आधा घण्टा पहले व आधा घंटा बाद जल न पियें, जल ज्यादा ठन्डा न पियें जल रूक–2 कर पियें, जल खड़े होकर न पियें। टट्टी करते समय दांत पर दांत व होठ पर होठ रखने से दांतों में कमजोरी नहीं आती।

(46) छींक आना एक प्राकृतिक वेग है जो कि अच्छे स्वास्थ्य की निशानी है मध्यकालीन ढोंगी लेखकों ने इसे अपशकुन माना है छींक को विदेशी शुभ मानते हैं छींक की कभी भी रोकना नहीं चाहिए प्राकृतिक वेग जैसे भूख, प्यास, छींक, नींद, टट्टी, पेशाब आदि रोकने से आयुर्वेदानुसार शरीर रोगी हो जाता है।

(47) निरोग रहने के लिये चैत्र में गुड़ न खायें नीम चबायें, वैशाख में नया तेल न खायें चावल खायें, जेठ में दोपहर को न चलें दोपहर को सोयें, आषाढ़ में बेल न खायें भवन निर्माण/मरम्मत करें, सावन में हर्र खायें दूध न पियें, भादों में चना खायें दही न खायें, क्वार में गुड़ खायें करेला न खायें, कार्तिक में मूली खायें भूमि पर न सोयें, अगहन में तेल खायें जीरा न खायें, पौष में दूध पियें तुरई न खायें, माघ में खिचड़ी खायें मिश्री न खायें, फाल्गुन में प्रात: स्नान अवश्य करें चना न खायें सायंकाल के भोजन के बाद थोड़ा गुड़ खायें ऐसा करने से कफ! जनित रोग नहीं होते।

(48) लगभग 40 की उम्र के बाद शरीर में अलग से कैल्सियम की आवश्यकता पड़ती है यदि शरीर में कैल्सियम की कमी होगी तो अन्य औषधियां लाभ नहीं करेंगी जैसे खेत में नमी न हो तो खेत में खाद व बीज डालना बेकार है कैल्सियम दूध, दही, मट्ठा, मक्खन, घी व केला में पर्याप्तमात्रा में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त गोबर की खाद से पैदा किये गये अन्न में भी पर्याप्त मात्रा में कैल्सियम पाया जाता है। प्रात: एक गेहूँ के दाने के बराबर प्रतिदिन चूना खाने से कैल्सियम की पूर्ति हो जाती है। अधिक खाने से पथरी रोग हो जाता है। चूना वात नाशक है। चूना खाने से दृष्टि में लाभ, घुटनों के दर्द में लाभ बालों का असमय पकने से रुकना व अन्य कई लाभ होते हैं।

(49) पुराणों में वर्णित सर्पयज्ञ में लिखा है कि जलते हुये यज्ञ कुंड में सांप आकर गिरते हैं दूरदर्शन ने धारावाहिक में चित्रों के माध्यम से सांपों को यज्ञ कुंड में गिरते दिखाया गया है, देव यज्ञ तो प्राणि मात्र के कल्याण के लिये किया जाता है। जहां पर कोई प्राणी मरे वह यज्ञ नहीं हिंसा है जबकि वास्तविकता यह है कि सर्पयज्ञ में घी की मात्रा बहुत प्रयोग की जाती है। घी की टेढ़ी-मेढ़ी धाराओं का गिरना सर्पयज्ञ कहलाता है। यह यज्ञ प्राचीन समय में राजा जनमेजय ने किया था। पुराणों में वर्णित सर्पयज्ञ अंधविश्वास को बढ़ावा देती है। धर्म में ऐसे अवैज्ञानिक तथ्य सम्मिलित हो गये जो मूर्खता की सीमाओं तक जा पहुंचे। पुराणों में शाप की भरमार, कामुकता का प्रसार, निर्विकारी को विकार सार्वदेशिक अवतार यज्ञ में मांस की आहुति को धर्म, पुराणों में एक दूसरे की परस्पर विरोधी, पुराणों के समर्थक पुराणों को वेद व्यास की रचना मानते हैं। पुराणों के लेख वेद के असंगत हैं। ब्रह्मपुराण और स्कन्द पुराण में जगन्नाथ के मन्दिर का महत्व लिखा है। जिसे राजा भीमदेव ने सम्वत् 231 में बनवाया व मन्दिर पर लिखवाया। जगन्नाथ के मन्दिर का महत्व स्कन्द पुराण में आया। अत: स्कन्द पुराण को वेद व्यास ने नहीं किसी अन्य व्यक्ति ने बनाया क्योंकि वेदव्यास को हुए लगभग 5000 वर्ष हो गये।

(50) सती शब्द सत से बना है जिसका अर्थ होता है पतिव्रता स्त्री सीता, सावित्री, अनुसुइया सती थी। मध्यकाल में जो पति की मृत्यु के बाद जली या जलाई गई इसमें कुछ जौहर प्रथा का प्रभाव आया तथा जो जलाई गईं यह हिन्दुओं में बहुत बड़ी कुरीति पनपी जिसका राजा राममोहन राय ने विरोध करके सन् 1828 में अंग्रेज शासक लार्ड विलियम वैन्टिंग से कानून बनवाकर तथाकथित सती प्रथा का अन्त किया। अपना प्राचीन स्वर्णिम इतिहास उठाकर देखें यदि पति की मृत्यु के बाद स्त्री को चिता में जलता धर्म होता तो राजा दशरथ की मृत्यु के बाद राजा दशरथ की रानियां चिता में कहां जलीं चिताओं में स्त्रियों को जलाना व समर्थन करना ये इतिहास के कलंकित पृष्ठ हैं।

(51) आधुनिक समय के तथाकथित पढ़े लिखे लोग 1 जनवरी को नववर्ष मनाते। जनवरी ईसाइयों के नववर्ष की है। 1 जनवरी को प्रकृति में कुछ नया नहीं होता तारीख कल्पित होती है जबकि तिथि प्राकृतिक/ वास्तविक होती है। हमारा नया वर्ष चैत्र प्रतिपदा 1 है क्योंकि इसी दिन आज से (वि. सं. 2072) 196853116 वर्ष पूर्व ब्रह्माजी ने सृष्टि की रचना इसी दिन चैत्र प्रतिपदा 1 को की थी तथा इसी दिन सम्राट विक्रमादित्य ने 2071 वर्ष पहले इसी दिन राज्य स्थापित करके

विक्रमी सम्वत् की शुरुआत की। इसी दिन लंका में राक्षसों का विनाशकर अयोध्या में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम लौटे और राज्याभिषेक हुआ। इसी दिन युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हुआ। भारत की अतीत श्रेष्ठता को स्थापित करने हेतु महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इसी दिन मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की। आर.एस.एस. के संस्थापक डॉ0 केशवराय जी व सन्त झूलेलाल का जन्म व सिक्ख परम्परा के द्वितीय गुरु अंगदेव का जन्म हुआ। इसी दिन शालिवाहन संवतसर का प्रारम्भ दिवस व युगाब्द का प्रथम दिवस तथा संगठन में शक्ति नवदुर्गा के नवरात्रि का आरम्भ इसी दिन से तथा प्रकृति में नया अन्न व नये पत्ते फल-फूल पल्लवित होते दृष्टि में आते हैं।

(52) भारत का राष्ट्रीय वाक्य सत्यमेव जयते, राष्ट्रीय गान-जन गण मन, राष्ट्रीय गीत-वन्दे मातरम, राष्ट्रीय झण्डा-तिरंगा, राष्ट्रीय चिह्न-अशोक, राष्ट्रीय सम्मान-भारत रत्न, राष्ट्रीय वृक्ष-वट, राष्ट्रीय पुष्प-कमल, राष्ट्रीय भारत रत्न, राष्ट्रीय फल-आम, राष्ट्रीय पशु-चीता, राष्ट्रीय पक्षी-मोर, राष्ट्रीय मुद्रा-रुपया, राष्ट्रीय भाषा-हिन्दी, राष्ट्रीय खेल-हॉकी, राष्ट्रीय पर्व 15 अगस्त व 26 जनवरी, राष्ट्रीय कवि-रामधारीसिंह दिनकर व मैथिलीशरण गुप्त तथा राष्ट्रीय नदी गंगा है।

(53) राम-लक्ष्मण के गुरु विश्वामित्र, कृष्ण-सुदामा के गुरु-संदीपनि, कौरव-पाण्डव के द्रोणाचार्य, दयानन्द के विरजानन्द, विवेकानन्द के स्वामी रामकृष्ण परमहंस, चन्द्रगुप्त मौर्य के चाणक्य, शिवाजी के रामदास, राजा जनक के अष्टवक्राचार्य, तुलसीदास के नरहरिदास, सूरदास के बल्लभाचार्य, कबीरदास के रामानन्द, चैतन्य के केशव भारती, मीराबाई के रामदास, तानसेन के हरिदास, चरक के वैश्मापायन, मैथिलीशरण गुप्त के हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्यामकृष्ण वर्मा के महर्षि दयानन्द, वाग्भट्ट के चरक, पं. रामप्रसाद बिस्मिल के सोमदेव, रामदेव के आचार्य बलदेव, राजीव दीक्षित के धर्मपाल तथा गांधी जी के राजनैतिक गुरु गोपालकृष्ण गोखले थे।

(54) राम एक आदर्श पुत्र, आदर्श भ्रात, आदर्श पत्नीव्रत, आदर्श प्रजापालक, आदर्श निष्कामसेवी, आदर्श दलितोद्धारक, आदर्श सौन्दर्य समन्वित, आदर्श मर्यादा पालक, आदर्श संयमी, आदर्श राष्ट्रभक्त, आदर्श दृढ़प्रतिज्ञ, आदर्श धनुर्धर, आदर्श यज्ञप्रेमी, आदर्श कर्तव्यपाठक, आदर्श ब्रह्मचारी, आदर्श शरणागत पालक, आदर्श सदाचारी, आदर्श दयालु, आदर्श धर्म धुरीण,आदर्श विद्वान्, आदर्श ईश्वरभक्त, आदर्श सखा, आदर्श धैर्यवान, आदर्श आर्य, आदर्श जितेन्द्रिय व आदर्श त्यागी व आदर्श सम्राट थे।

(55) सृष्टि की सबसे प्राचीन पुस्तक वेद में अभिवादन नमस्ते है अतीत भारत में राजा दशरथ,वशिष्ठ, विश्वामित्र, राम, कृष्ण व बाल गोपाल आपस में सब नमस्ते करते व करवाते थे। आर्यसमाज के संस्थापक व वेदों का नारा देने वाले सत्यार्थ प्रकाश के प्रणेता महर्षि दयानन्द सरस्वती ने नमस्ते पर जोर दिया। शहीदे आजम सरदार भगतसिंह पत्र व्यवहार में नमस्ते लिखते थे। आधुनिक समय में आर्यसमाज के भजनोपदेशक, उपदेशक, उपदेशिकाएं, वानप्रस्थी व संन्यासी आत्मिक भाव से नमस्ते करते व करवाने में ही आत्मिक आनन्द मानते हैं। भिन्न-2 अभिवादनों के प्रयोग से संविधान के मौलिक अधिकार (समता का अधिकार) पर कुठाराघात होकर समाज

में ऊँच-नीच का भाव पैदा होकर राष्ट्रीय एकता खण्डित हो जाती है। एयर इन्डिया में परिचारिकाएं नमस्ते कहकर अभिवादन करने लगी हैं। नमस्ते में संकीर्णता नहीं सार्वभौमिकता है। जय श्रीराम हमारा अभिवादन नहीं। रामायण कालीन सैनिक उद्घोष था। विश्व के विद्वानों ने नमस्ते अभिवादन को श्रेष्ठ माना है। (राष्ट्र धर्म मार्च 2001) नमस्कार अभिवादन कम आदेश माना है। अमेरिका की टाइम पत्रिका के सुप्रसिद्ध स्तम्भाकार लास मोरो ने माना कि ईसा की अगली सहस्राब्दि में अभिवादन का सर्वश्रेष्ठ तरीका नमस्ते होगा। सितम्बर 2014 में भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी यू.एन.ए. जाकर नमस्ते, वन्दे मातरम् का प्रयोग करके सदन को भारत की राष्ट्रभाषा में सम्बोधित किया।

(56) सबका सांस्कृतिक नाम आर्य, सबका सांस्कृतिक ध्वज ओ३म्, सबकी सांस्कृतिक लिपि-देवनागरी, सबकी सांस्कृतिक भाषा-संस्कृत, सबका राष्ट्रीय ध्वज-तिरंगा, सबकी एक सांस्कृतिक सभ्यता-वैदिक, जिसके 4 स्तम्भ ओ३म्, नमस्ते, यज्ञ, दान वैदिक सभ्यता के चिह्न-चोटी, जनेऊ, कर्घनी, लंगोट धर्म के 3 कन्धे यज्ञ अध्ययन, दान व वैदिक माताएं जननी, पृथ्वी, गौ, वेद।

(57) सबसे पहला मोबाइल फोन ईश्वर ने बनाया उसका नाम रखा प्रार्थना इसका प्रयोग आप कहीं से भी करें इसका सिग्नल कभी खोता नहीं तथा इसे कभी रिचार्ज भी नहीं कराना पड़ता।

(58) दूरदर्शन पर विभिन्न चैनलों के धारावाहिकों को देखकर बच्चे बिगड़ते हैं जबकि कहानियों से बच्चों का मानसिक विकास होता है। प्यासे कौवे की कहानी से हमें मेहनत करने की प्रेरणा, कछुआ व खरगोश की कहानी से हमें निरन्तर गतिशील रहने की प्रेरणा, राजा हरिश्चन्द्र की कहानी से हमें सत्य बोलने की प्रेरणा, कृष्ण व सुदामा की कहानी से हमें अच्छी मित्रता की प्रेरणा, महर्षि दधीचि के जीवन से राष्ट्र कल्याणार्थ जीवनदान की प्रेरणा, राजा भागीरथ की कथा से कठिन परिस्थितियों में परिश्रम द्वारा सफलता की प्रेरणा, सिंह व खरगोश की कथा से हमें शिक्षा मिलती है कि विद्या व बल से बुद्धि बड़ी है गिलहरी और कौवे की कहानी से हमें प्रेरणा मिलती है कि अन्याय से अर्जित धन देखते-2 नष्ट हो जाता है, मुर्गा व लोमड़ी की कथा से हमें शिक्षा मिलती है कि लालची हानि उठाता है हंस से नीर क्षीर पृथक करने की चातुर्यता प्रह्लाद व हिरण्यकश्यप की कथा से सत्य दृढ़ता व सत्याग्रह की शिक्षा मिलती है अर्थात् चाहे संकटों का सागर उमड़ेआपत्तियोंकी आंधी चले लोक निन्दा की नदियां बहें चाहे स्तुति के पहाड़ खड़े हो जायें लेकिन एक सत्यव्रती का कर्त्तव्य है कि वह अपने निश्चित पथ से कभी विचलित न हो, चिड़िया के दाने वाली कथा से प्रेरणा मिलती है कि प्रकृति में प्रत्येक छोटा बड़ा प्राणी व वस्तु अपने स्थान पर महत्वपूर्ण है तथा लक्ष्य प्राप्ति तक रुकनी नहीं चाहिए इसके अतिरिक्त सूर्य से अनुशासन की, चाँद से निष्पक्ष भाव से सबकी भलाई करने की, पृथ्वी से धैर्य की, बादल से दान की दर्पण से स्पष्ट कहने की, सुई और धागे से बिछुड़े को गले लगाने की, दीप व पतंगा से राष्ट्र पर बलिदान की, मछली और जल से स्वदेश प्रेम की तथा वृक्षों के पतझड़ से दुःख में धीरज धरने की प्रेरणा मिलती है। महापुरुषों के जीवन परक कथानकों प्रसंगों एवं जीवनियों से व्यक्ति उत्साहित होते हैं नवस्फूर्ति का संचार होता है। ऐसे में व्यक्ति उचित अवसर की तलाश भी करता है।

-(शेष अगले अंक में)

गतांक से आगे–

जीवन–संग्राम में विजय–प्राप्ति के कुछ उपाय

लेखकः स्वामी सोमानन्द महाराज

शारीरिक स्वास्थ्य

स्नान, भोजन, स्वच्छता आदि

इन विषयों की शिक्षा हम लोगों को छुटपन ही से मिलनी चाहिए। शारीरिक स्वास्थ्य के लिए इन बातों की आवश्यकता में कुछ भी सन्देह नहीं है, परन्तु इन बातों की ओर उचित ध्यान न देने से बहुत हानि होती है। आजकल के डाक्टरों की राय है कि हिन्दुस्तानियों में स्वच्छता और सफाई की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता है और इसीलिए वे सदा रोगी और निर्बल बने रहते हैं। बात सच है। इसका एकमात्र उपाय ही है कि इस विषय पर कुछ व्यवहारिक शिक्षा दी जाने का प्रबन्ध हमारी पाठशालाओं में किया जाना चाहिए। विस्तार के भय से इस विषय के नियमों का विवेचन यहाँ नहीं किया जा सकता।

वायुसेवन और व्यायाम

हमारे आयुर्वेद के ग्रन्थों में कहा है–

"लाघवं कर्मसामर्थ्य दीप्ताग्निं मेदसाक्षयम्।
विभक्तघनगात्रत्वं व्यायामादुपजायते।। "

अर्थात् कसरत करने से शरीर हल्का और काम करने में समर्थ रहता है, अग्नि तेज होती है, मोटापन दूर होता है और शरीर पुष्ट होता है। जिसका शरीर व्यायाम से दृढ़ हो चुका है उसको व्याधि कभी नहीं सताती। खेलकूद, कसरत, वायु सेवन आदि व्यायाम के अनेक भेद हैं। हर्ष की बात है कि आजकल इस विषय पर कुछ अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। इस विषय पर अनेक महत्त्वपूर्ण और स्वतंत्र ग्रन्थ लिखे गये हैं। यहाँ सिर्फ इतनी सूचना दे दना आवश्यक है कि विद्यार्थियों के लिए बुद्धि का विकास जितना आवश्यक है उतना ही शरीर का स्वास्थ्य भी है। इसलिए भूलकर भी व्यायाम से घृणा नहीं करनी चाहिए।

नींद

भोजन की तरह नींद भी प्राणरक्षा के लिए आवश्यक है। सुखमय नींद प्राप्त करने के लिए हमें दिन में अपनी शक्ति के अनुसार काम करते रहना चाहिए। अधिक सोने से या अधिक जागने से कई प्रकार

की बीमारियाँ पैदा होती हैं। इसलिए अपनी अवस्था के आवश्यकतानुसार ही सोना चाहिए। अशक्त और विद्याभ्यासी बालक यदि नौ घण्टे तक भी सोते रहें तो कुछ हानि नहीं। प्रकृति के नियम के अनुसार सोने का समय रात्रि ही है। इसलिए दिन को बिना किसी सच्चे कारण के नहीं सोना चाहिए। बालकों के लिए 10 बजे रात से अधिक देर तक जगते रहना हानिकारक है। यह कहावत प्रसिद्ध ही है–

"Early to bed and early to rise
Makes a man healthy wealthy and wise."

मानसिक स्वास्थ्य

स्मरण रहे कि शरीर की सुस्थिति के लिए सूक्ष्म रूप से मन ही मूल कारण है। हमारे शरीर में जितने रोग होते हैं उनमें से प्रायः सबके सूक्ष्म बीज पहले हमारे मन ही में उत्पन्न होते हैं। सुप्रसिद्ध विद्वान् लार्ड एव्हबरी का कथन है कि–

"Many bodily ailments have their origin in the mind." क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, भय, उदासीनता, सन्ताप, चिन्ता आदि मानसिक विकारों से हमारी आयु का नाश हो जाता है। यदि हम अपने मन के इन विकारों को अपने अधीन रखने का प्रयत्न न करें तो स्वास्थ्य रक्षा के अन्य नियमों के पालन करने से भी कुछ विशेष लाभ न होगा। यह बात किसी से छिपी नहीं है कि सैण्डों की व्यायाम पद्धति में मन की इच्छाशक्ति ही को प्रधान महत्व दिया गया है। तात्पर्य यह है कि शारीरिक स्वास्थ्य के हेतु किसी उपाय का अवलम्ब करते समय हमको अपने चित्त की प्रसन्नता की ओर बहुत ध्यान देना चाहिए। यदि हमारा मन प्रसन्न, आनन्दित, शान्त और अपने स्वीकृत कार्य में एकाग्र रहेगा तो निस्सन्देह व्यायाम आदि उपायों से हमारे शरीर का स्वास्थ्य ठीक–ठीक बना रहेगा।

सारांश यह है कि आरोग्यता से इस संसार के सब सुख प्राप्त हो सकते हैं। जीवन–संग्राम में विजय–प्राप्त करने के लिए यही सबसे बड़ा और पहला उपाय है। इसकी सिद्धि के लिए ब्रह्मचर्य, स्नान, भोजन, स्वच्छता, वायुसेवन, व्यायाम, नींद, मानसिक स्वास्थ्य आदि जिन उपायों का वर्णन संक्षेप में यहाँ किया गया है उन पर हमारे पूजनीय प्राचीन ऋषियों ने बड़े–बड़े ग्रन्थ लिख रक्खे हैं। यदि हम आरोग्य की ओर उचित ध्यान न देंगे तो हमें सदा यही कहना पड़ेगा कि **"तन रोगों की खान है"** और **"यह संसार असार है।"** रोगी मनुष्य अपने कुटुम्ब के लिए भार तो हो ही जाता है, परन्तु वह स्वयं अपने जीवन को भी भाररूप मानने लगता है। व्याधि से अधिक भयानक शत्रु इस संसार में कोई नहीं है। इससे अपने शरीर को सदा बचाये रखने का प्रयत्न करना प्रत्येक मनुष्य का पवित्र कर्तव्य है। ❁❁❁

दीपावली पर्व के उपलक्ष्य में 'तपोभूमि' परिवार के सभी सदस्यों को हार्दिक शुभकामनायें

गतांक से आगे–

पुराणों को किसने बनाया?

लेखक: डॉ0 श्रीराम आर्य

पुराणों में जो भिन्न-भिन्न पुराणों की श्लोक संख्या दी है वह भी परस्पर विरूद्ध है। इसी प्रकार की सूची भेद एवं श्लोक संख्या में भेद सभी पुराणों में वर्णित सूचियों में देखने में आता है।

अत: स्पष्ट है कि पुराणों के आधार पर 18 पुराणों की सर्वमान्य सूची भी पौराणिक विद्वान् पेश नहीं कर सकते।

पुराणों की श्लोक व अध्याय संख्या में गड़बड़ी

पुराणों के जितने भी संस्करण भिन्न-भिन्न स्थानों से प्रकाशित हुए हैं, उन सभी में पाठ भेद, श्लोक संख्या में अन्तर तथा अध्यायों में अन्तर देखा जाता है। श्रीमद् भागवत पुराण गीता प्रेस गोरखपुर के छपे हुए में कुल श्लोक संख्या 14180 हैं तथा महात्म्य प्रकरण जो पद्म पुराण से लेकर उसके प्रारम्भ में जोड़ा गया है। उसकी श्लोक संख्या 502 है। जबकि भागवत के बारे में स्पष्ट उल्लेख सभी पुराणों में यह है कि–

"**अष्टादश सहस्र श्री भागवत मिष्यते।**" (भागवत पुराण 12-33-97)

उसकी श्लोक संख्या 18000 है।

इसका अर्थ यह हुआ कि वर्तमान भागवत में से 3820 श्लोक निकाल डाले गये हैं। जिस ग्रन्थ में 18000 में से 3820 श्लोक कम कर दिए गये हों, वह कटा-छटा अधूरा ग्रन्थ प्रमाणिक नहीं माना जा सकता है।

इसी प्रकार पद्म पुराण आनन्द आश्रम पूना के छपे में तथा मोर के कलकत्ता संस्करण में श्लोकों के अध्यायों का विशाल अन्तर देखने में आता है। यही स्थिति अन्य सभी पुराणों की भी है।

पुराणों की संख्या में भी भेद रहा है

शिव पुराण के पीछे दिए गये प्रमाण से प्रगट होता है कि पुराणों की संख्या 26 थी। बाद में उनमें से आठ पुराण नष्ट कर दिये और शेष 18 पुराण ही रह गये। इनकी श्लोक संख्या भी प्रारम्भ में कितनी थी? यह भी पुराण के निम्न प्रमाण से स्पष्ट हो जाता है–

सारे पुराणों में कभी 12000 श्लोक थे

भविष्य पुराण ब्रह्म पर्व अध्याय 1 में लिखा है–

सर्वाण्येष पुराणानि संज्ञेयानि नरर्षभ।
द्वादशैव सहस्राणि प्रोक्तानिह मनीषिभिः।। 103।।

पुनर्वृद्धिं गतानीह आख्यानैर्विविधैर्नृप।
यथा स्कन्दं तथाचेदं भविष्यं कुरूनन्दन॥ 104॥
स्कान्दं शत सहस्रं तु लोकामांज्ञातमेव हि।
भविष्यमेतदृषिणां लक्षार्धं संख्यया कृतम्॥ 105॥

अर्थात्– हे राजन्! सारे पुराणों में कुल मिलाकर 12000 श्लोक थे, ऐसा विद्वानजन कहते हैं, उनमें अनेक प्रकार के उपाख्यान अर्थात् कथा–कहानियां बाद में जोड़–जोड़कर उनकी संख्या बढ़ा दी गई।

जैसे स्कन्द पुराण में 1 लाख श्लोक तथा भविष्य पुराण की श्लोक संख्या 50000 तक पहुँचा दी गयी, जबकि भागवत पुराण, स्कन्द 12, अध्याय 13 श्लोक 6 में भविष्य पुराण की श्लोक संख्या **'चतुर्दश भविष्यं स्यात्तथा पंच शतानिच'** अर्थात् 14,500 लिखी है अर्थात् भागवत् बनने तक भविष्य पुराण में चौदह हजार पांच सौ ही श्लोक थे और अब 50 हजार हो चुके हैं।

पुराणों की वास्तविक स्थिति प्रकट करने के लिए उपरोक्त प्रमाण पुष्कल प्रकाश डालते हैं।

कभी जिन पुराणों में केवल बारह सहस्र श्लोक थे, अब उन्हीं के बारे में पुराणों में लिखा मिलता है।

18 पुराणों में चार लाख श्लोक हैं

एवं पुराण सन्दोहश्चतुर्लक्ष उदाहृतः॥ (भागवत पुराण, 12-13-9)

अर्थात्– अठारह पुराणों में चार लाख श्लोक हैं।

इसका स्पष्ट अर्थ है कि तीन लाख अट्ठासी हजार नये श्लोक गढ़कर लोगों ने बारह हजार श्लाकों में जोड़ दिये गये हैं।

पुराणों का सम्पूर्ण उपाख्यान भाग भविष्य पुराण के अनुसार पूर्णतः बाद का प्रक्षिप्त अंश है। इस भयंकर प्रक्षेप को देखकर महान आश्चर्य होता है।

इसी प्रकार भयंकर प्रक्षेप महाभारत में भी देखने मे आता है। मध्यवर्ती काल में भारतीय संस्कृत साहित्य को किस प्रकार भ्रष्ट किया गया है? यह इस बात का प्रमाण है।

वर्तमान में पुराण ग्रन्थ जिस रूप में हमारे सामने उपस्थित हैं, उससे उनकी सर्वांश में प्रमाणिकता स्वीकार नहीं की जा सकती है।

उपपुराणों के नाम

पुराणों के समान ही उपपुराणों की भी यही स्थिति है। उनकी भी संख्या 18 बताई जाती है। कुछ विद्वान् उपपुराणों को निम्न प्रकार मानते हैं–

1. आदि पुराण 2. नृसिंह पुराण 3. वायु पुराण 4. शिव धर्म 5. दुर्वासा 6. कपिल 7. नारद 8. नन्दिकेश्वर 9. शुक्र 10. वरूण 11. साम्ब 12. कल्कि 13. महेश्वर 14. पद्म 15. देव 16. पाराशर 17. मारीच 18. भास्कर।

जबकि अन्य विद्वान् इनके अतिरिक्त निम्न पुराणों को भी उपपुराणों में गिनते हैं–

(1) आत्मपुराण, (2) देवी भागवत, (3) महा भागवत, (4) युग पुराण, (5) वायु पुराण, (6) सौर पुराण, (7) केदार कल्प पुराण।

इससे यह भी प्रकट होता है कि कुछ पुराणों ने जहां वायु व नृसिंह पुराणों को मुख्य पुराणों में माना है, वहां कुछ ने उनको उपपुराणों में परिगणित किया है।

केदार कल्प पुराण को जहाँ कुछ पौराणिक विद्वान उपपुराणों में भी नहीं गिनते हैं, वहाँ बैंकटेश्वर प्रेस बम्बई तथा चौखम्भा संस्कृत सीरीज के विद्वान उसे उपपुराण मानते हैं।

पुराण एवं उपपुराणों की संख्या में इतना गोलमाल है कि यह भी निर्णय करना कठिन है कि कौन पुराण मुख्य पुराण है और कौन उपपुराण है? विशेषता यह है कि सभी पर यह लिखा हुआ मिलता है कि **'व्यास कृत'** हैं।

व्यास जी ने तात्पर्य उन महर्षि वेद व्यास से लिया जाता है जो महाभारतकाल में थे तथा उन्होंने नियोग करके पाण्डु, धृतराष्ट्र और विदुर को जन्म दिया था, जो स्वयं सत्यवती के गर्भ से पाराशर ऋषि द्वारा उत्पन्न हुए थे, जिनको कृष्ण द्वैपायन व्यास भी कहा जाता है।

वर्तमान में जो पुराण ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उन्हें देखकर तो यह मानना सम्भव नहीं है कि इनके रचयिता श्री वेदव्यास जी थे। यह बात यदि कही जाये कि श्री वेदव्यास जी ने पुराण बनाये थे, उनमें केवल 12,000 श्लोक मात्र थे तथा उनमें पुराणों के मान्य विषय के अनुसार निम्न लक्षण मिलते थे तो कुछ संगति लग सकती है।

पुराण का लक्षण

सर्गश्च प्रति सर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितंचैव पुराणं पंचलक्षणम्।। (भविष्य पुराण, ब्रह्म खण्ड, अध्याय 2-5)

अर्थात्– सृष्टि का वर्णन, पुनः सृष्टि और प्रलय, पूर्व के सब मन्वन्तरों का अधिपत्य काल व वंशावलियाँ, राजाओं की वंशावलियां यह उपलब्ध होते हों, यह पुराण का लक्षण है।

व्यास जी के काल तक का वर्णन उन पुराणों में होगा, पर बाद को भविष्य पुराण के अनुसार लोगों ने नाना प्रकार के उपाख्यान उनमें जोड़कर उन पुराणों को इतना विस्तृत कर दिया कि तब उनका सही स्वरूप क्या था? यह निर्णय करना भी कठिन है।

बारह हजार श्लोक वाले ग्रन्थों में तीन लाख अट्ठासी हजार श्लोक मिलाकर मध्यकालीन पण्डितों ने मूल ग्रन्थों का स्वरूप ही नष्ट कर डाला है। यदि यह बात मान ली जाये तो पुराणों पर हमारा विवाद बहुत कुछ समाप्त हो जाये। किन्तु दुख है कि अन्धविश्वासी पौराणिक विद्वान लोग इस बात को न मानकर वर्तमान पुराणों को इसी रूप में बनाने का दोष श्री वेदव्यास जी पर मढ़ते हैं।

अतः यहाँ हम पुराणों की कुछ अन्तः साक्षियों के द्वारा इस पर विचार करते हैं कि पुराणों का रचनाकाल क्या हो सकता है? उनके बनाने वाले कौन लोग थे?

भारत के ऐतिहासिक शोधकर्ता विद्वानों ने पुराणों के बारे में शोध करके यह निष्कर्ष निकाला है

कि उनका रचनाकाल लगभग गुप्तकाल के आसपास से प्रारम्भ होता है।

भाषा विज्ञान के विद्वानों ने भी ऐसा ही माना है कि पुराणोक्त संस्कृत एवं उनकी शैली गुप्तकाल के आसपास की शैली से मेल खाती है।

पुराणों में जैन व बौद्ध धर्म का बहुधा वर्णन मिलता है। उससे भी यह सिद्ध होता है कि उनका रचनाकाल उस समय का है जबकि जैन व बौद्ध धर्म का इस देश में प्रस।र हो रहा था।

कुछ ऐतिहासिक लोग मानते हैं कि महात्मा बुद्ध व महावीर स्वामी का समय समकालीन था तथा वह अब से 2500 वर्ष पूर्व था। अब हम पुराणों में से बौद्ध व जैन धर्म का वर्णन उपस्थित करते हैं।

पुराणों में जैन व बौद्ध धर्म का वर्णन

शिव पुराण रूद्र संहिता, युद्ध खण्ड, अध्याय 16, श्लोक 11 में लिखा है–

नमस्ते गूढ़देहाय वेद निन्दा कराय च।
योगचार्याय जैनाय बौद्धरूपाय मापते।।

इस श्लोक में जैन व बौद्धों का वर्णन स्पष्ट है।

मत्स्य पुराण अध्याय 24, श्लोक, 47 में लिखा है–

गत्वाथ मोहयामास रजि पुत्रान् बृहस्पतिः।
जिन धर्म समास्थाय वेद वाह्यं स वेदवित्।। 47।।

अर्थात्– बृहस्पति जी ने वेद विरूद्ध जैन धर्म का प्रचार किया।

स्कन्द पुराण माहेश्वर खण्ड के कौमार खण्ड, अध्याय 37, श्लोक 57 में लिखा है–

नाभे पुत्रश्च ऋषभ ऋषभांद्भरतो भवत्।
तस्यानाम्नाविदं वर्ष भारतं चेति कीर्त्यते।।

अर्थात्– नाभिराजा के पुत्र ऋषभ भरत कहलाये। उनके नाम पर इस देश को 'भारत' कहा गया।

लिंग पुराण पूर्वाध अध्याय 47 में लिखा है–

नाभेर्निसर्ग वक्ष्यामि हिमाँकेस्मिन्निबोधत।
नाभिस्त्वजनयत्पुत्रं मेरूदेव्यां महामतिः।। 19।।
ऋषभं पार्थिव श्रेष्ठं सर्वं क्षत्रस्य पूजितं।
ऋषभाद्भरतो यज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः।। 20।।

अर्थात्–नाभि राजा की पत्नी मेरूदेवी से ऋषभदेव नाम का पुत्र पैदा हुआ इत्यादि।

स्कन्द पुराण काशीखण्ड, अध्याय 37, श्लोक 77 में लिखा है–

गजवाजि वृषाकाराः करे वामे मृगी दृशाम्।। 76।।
रेखाः प्रसाद वज्राभा ब्रू युस्तीर्थंकरं सुतम्।। 77।।

अर्थात्– औरतों के बायें हाथ में घोड़ा, बैल, हिरणी, मकान तथा वज्राकार लकीरें तीर्थंकर पुत्र को बताती हैं।

इसमें आया तीर्थंकर शब्द जैन धर्म के तीर्थकरों का वाची है।

–(शेष अगले अंक में)

स्वावलम्बन

अदीनाः स्याम शरदः शतम्

वेद हमें उपदेश देता है कि हम सौ वर्ष पर्यन्त दीन और दुर्बल न होते हुए उन्नति–मार्ग पर बढ़ते चलें जावें। पराधीन और परतन्त्र कभी न रहें। स्वातन्त्र्य और स्वावलम्बन का आश्रय लेते हुए आत्मोद्धार करते चले जायें। दीन हीन और मलीन विचारों को अपने निकट न आने दें। अपने चारों ओर उत्साह का वायुमण्डल उत्पन्न करते हुए स्वयं आगे बढ़ें और दूसरों को आगे बढ़ने की प्रेरणा करें।

हमारी शारीरिक, सामाजिक तथा आत्मिक उन्नति के लिए स्वावलम्बी होना परमावश्यक है। उन्नति वस्तुतः अपने किये का ही नाम है। दूसरों का आश्रय लेकर के जो कार्य हम करते हैं, उन्हें उन्नति के नाम से पुकारना भूल है। एक बच्चा अपनी शैशवावस्था में निःसहायी होता है। माँ–बाप उसकी सहायता करते हैं। परन्तु समय पाकर वह स्वयं अपनी टाँगों पर खड़ा होता है और चल फिर कर उन्हें बलिष्ठ करता है; दौड़ने भागने के योग्य बनता है। यदि वह सदैव माता–पिता की अंगुली पकड़े रहता, तो उसकी टाँगों में बल न आता और वह स्वयं चलने फिरने के योग्य न बनता। ठीक यही दशा हम बालकों की विद्योपार्जन के सम्बन्ध में देखते हैं। शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य यह है कि वह मनुष्य को स्वयं विचार करने के योग्य बनाए। जब हम अपने लिए स्वयं विचार करना सीखते हैं तभी हमारी वास्तविक शिक्षा का प्रारम्भ होता है। अपना खाना हमें स्वयं पचाना चाहिए; तभी वह हमारे शरीर को हृष्ट पुष्ट बना सकता है। इसी प्रकार विद्या के क्षेत्र में जो विद्यार्थी स्वयं परिश्रम करके अपनी विद्या–वृद्धि नहीं करते, वे सुशिक्षित नहीं बनते। तुमने देखा होगा कि जिन धनिकों के गृह पर उनके बच्चों के अध्यापनार्थ विद्यालय के अध्यापकों के अतिरिक्त निजी अध्यापक भी रहते हैं, वे बालक प्रायः पढ़ने में कमजोर रहते हैं। उनको अपनी सहायता आप करने का अवसर मिलता ही नहीं। वे सदा अपने अध्यापक की बाट जोहते रहते हैं। वे उस आश्रय को नहीं छोड़ते जिसके छोड़ने पर ही विद्याभ्यास का सच्चा अनुराग उत्पन्न होता है।

स्वावलम्बन का अभ्यास

स्वावलम्बन का अभ्यास डालने की प्रेरणा बच्चों को बाल्यावस्था से ही करनी चाहिए। अपने घर पर बहुत से छोटे–मोटे कार्य बच्चों को स्वयं करने चाहिए। उन्हें स्वयं मुंह हाथ धोना, स्वयं स्नान करना, स्वयं वस्त्र पहनना, स्वयं अपनी पुस्तकों की देखरेख करना सीखना चाहिए। जो बच्चे इन सब कार्यों को स्वयं नहीं करते, परन्तु उन्हें अपने माता–पिता पर छोड़ते हैं, वे स्वावलम्बन सीखने का अवसर खो रहे हैं। हमने कई ऐसे माता–पिता देखे हैं, जो अपने बच्चों के अन्धप्रेम में इतने डूबे रहते हैं कि वे अपने बच्चों की शक्तियों का विकास होने ही नहीं देते। ऐसे बालकों को कपड़े पहनने के लिए नौकर चाहिए, बस्ता उठाकर पाठशाला ले जाने के लिए नौकर चाहिए। बाहर घूमने जाना हो तो नौकर चाहिए। इस प्रकार सदा नौकरों का आश्रय ढूंढ़ने वाले बालक निरुत्साही, भीरु और परतन्त्र बने रहते हैं। विद्यालय में

अध्यापकों को बच्चों के स्वावलम्बी बनाने का विशेष प्रयत्न करना चाहिए। विद्यालय भी इस अभ्यास के डालने का उत्तम क्षेत्र है। बच्चों को स्वयं प्रश्न हल करना तथा उनके उत्तर देने का उद्योग करना सिखलाना चाहिए। वे अपनी पुस्तक के क्लिष्ट शब्द स्वयं कोष में देखें। वे स्वयं वादानुवाद करना सीखें। 'मैं नहीं कर सकता' 'मुझ से नहीं हो सकता' इत्यादि शब्दों का प्रलाप उन्हें नहीं करने देना चाहिए। उन्हें अपनी सहायता आप करने का पाठ भली प्रकार सिखलाना चाहिए। आलसी और प्रमादी विद्यार्थी विद्योपार्जन नहीं कर सकता–

सुखार्थिनः कुतो विद्या, विद्यार्थिनः कुतः सुखम्

क्रीड़ाक्षेत्र भी स्वावलम्बन की शिक्षा का एक उत्तम साधन है। फुटबाल, हॉकी, क्रिकेट इत्यादि खेलों में विद्यार्थियों को निश्चित स्थानों पर खड़ा होना पड़ता है। उन स्थानों की रक्षा का भार उनके कन्धों पर डाला जाता है। जो विद्यार्थी स्वयं सावधान रह कर अपने स्थान तथा कर्तव्य की रक्षा नहीं करता वह उत्तम प्रकार से खेल नहीं खेलता, और अच्छा खिलाड़ी भी नहीं बन सकता। यदि हम क्रीड़ा–क्षेत्र में उत्तरदायित्व को समझें और स्वावलम्बी बनने का अभ्यास डालें तो संसार क्षेत्र में वह अभ्यास हमारा सहायक बनेगा।

स्वावलम्बन के लाभ

1. स्वावलम्बन द्वारा हम दूसरों का परिश्रम बचाते हैं। अपना आश्रय लेकर हम अपने प्रति दूसरों की चिन्ता को मिटाते हैं। जिस माता का बच्चा स्वावलम्बी होता है वह माता व्यर्थ की चिन्ता से मुक्त हो जाती है। जिस गृह में परिवार के अधिकांश जन अपनी रक्षा स्वयं कर सकते हैं, वहाँ अधिक सुख विद्यमान रहता है। ईश्वर स्वावलम्बियों का सहायक होता है।

   अपने सहायक आप हो, होगा सहायक प्रभु तभी,
   बस चाहने से ही किसी को, सुख नहीं मिलता कभी।

2. स्वावलम्बन शिक्षा–प्राप्ति का एक मात्र साधन है जिस प्रकार हम अपना चलना फिरना स्वयं करते हैं; जिस प्रकार हम अपना भोजन स्वयं पचाते हैं; जिस प्रकार हम तैरना, घोड़े पर चढ़ना, बाइसिकिल चलाना इत्यादि कार्य स्वयं अपने परिश्रम से करते है, ठीक उसी प्रकार शिक्षा प्राप्ति में हमें अपने उद्यम और उद्योग से ही काम लेना पड़ता है।
3. स्वावलम्बन हमें आने वाले संकटों के लिए तैयार रखता है। हमारे माता–पिता, भाई–बन्धु मित्र और सहायक, गुरु और शिक्षक सदा हमारे साथ नहीं रहते। हम सबके लिए ऐसा समय अवश्य आता है, जब हमें केवल अपना ही आश्रय लेना पड़ता है। अपनी ही शक्तियों का द्वार खटखटाना पड़ता है। उस समय यदि स्वावलम्बन हमें सहायता न दे तो हमारा जीवन संकटमय हो जाता है। हम सबको एक न एक दिन निःसहाय होकर अपनी सहायता स्वयं करनी पड़ती है। स्वावलम्बन की आदत ही उस समय हमारी सहायक बनती है। अपने जीवन–संग्राम में तुम सब को ऐसे

अवसर प्राप्त होंगे जब तुम्हें अपनी टाँगों पर खड़े होकर अपने कार्य स्वयं करने पड़ेंगे। अतः स्वावलम्बन का अभ्यास अभी से डालो। अच्छा योद्धा वही होता है जो युद्ध के लिए हर समय तैयार रहता है। अपने अस्त्र-शस्त्र सुसज्जित रखता है और समय पड़ने पर रणक्षेत्र में कूद पड़ता है।

4. स्वावलम्बन हमारी सुख-समृद्धि का साधन बनता है। जो कार्य हम स्वयं करते हैं, अपने बाहुवल से करते हैं, उसमें अधिक आनन्द मिलता है। बच्चा अपने बनाए हुए खिलौने को अधिक प्रिय मानता है। मनुष्य अपनी कमाई को अधिक सावधानी से व्यय करता है। अपना आश्रय लेकर जो कार्य हम करते हैं, वे हमें अधिक सुख देते हैं। स्वावलम्बन से हमारा सम्मान अपनी दृष्टि में तथा दूसरों की दृष्टि में बढ़ता है। इससे भी हमारे सुख की वृद्धि होती है। समाज में हमारी स्थिति बनती है। हमारी मान-मर्यादा बढ़ती है। हमारा हृदय उत्साह-परिपूर्ण हो जाता है। हम स्वयं सुखी बनते हैं और दूसरों को सुखी बनाते हैं।

स्वावलम्बन का परिचय

स्वावलम्बन हमें स्वाधीन बनाता है। अपनी स्वाधीनता का परिचय हम कई प्रकार से दे सकते हैं। अपने कमाए हुए धन को हम स्वतन्त्रता-पूर्वक देश-हित और समाज-हित के कार्यों में लगा सकते हैं। दूसरों की सहायता के लिए विविध प्रकार से उद्योगशील हो सकते हैं। अपने कर्मों के हम स्वयं स्वामी बनकर जैसा चरित्र चाहें वैसा बना सकते हैं। लकीर के फकीर बनकर जो सदैव दूसरों का अनुकरण करते रहते हैं, वे स्वावलम्बन का आनन्द नहीं ले सकते। लोक-प्रथा का वहीं तक अनुकरण करो जहाँ तक वह तुम्हारे उन्नति-मार्ग पर सहायक हो सकती है। जहाँ लोक-प्रथा तुम्हारी उन्नति में बाधक हो वहाँ उसे त्याग दो और निर्भय होकर स्वावलम्बन का आश्रय लो। व्यक्तिगत जीवन और समाज-गत जीवन का सुधार स्वावलम्बन द्वारा ही सम्भव है। यदि तुम ब्रह्मचारी हो और तुम्हारे माता-पिता उचित समय से पूर्व ही तुमको विवाह के पाशों में जकड़ देना चाहते हैं, तो तुम निर्भय होकर उनकी आज्ञा-पालन से इन्कार कर दो। उस समय का थोड़ा सा कष्ट तुम्हारे सारे भावी जीवन के सुख का कारण बनेगा। तुम्हारे माता-पिता को अपनी भूल और भ्रम का ज्ञान हो जावेगा और वे तुम्हारे आज्ञा-भंग को बुरा न मानेंगे संसार के प्रत्येक प्रश्न के सम्बन्ध में जो तुम्हारी समझ में आ सकता है, अपनी सम्मति स्वयं स्थिर करने की चेष्टा करो। सदा दूसरों की सम्मतियों पर चलने से काम न चलेगा। समाज सम्बन्धी, देश-सम्बन्धी तथा धर्म-सम्बन्धी सब समस्याओं को अपनी बुद्धि और विचार शक्ति के अनुसार सिद्ध करने का प्रयत्न करो। भेड़चाल हमारी उन्नति में बाधक बनती है। अपने लिए स्वयं विचार करने के क्षेत्र में हम लोग बहुत पीछे हैं। इसीलिए हमारे देश-निवासियों में साहस, आत्म-विश्वास और आत्म-सम्मान के भावों की बहुत न्यूनता है। नवयुवको! तुम लोग अपनी सम्मतियों के स्वयं स्वामी बनो और उनकी जिम्मेवारी के बोझ को अपने कन्धों पर लेना सीखो। इससे देशोद्धार का मार्ग सुगम हो जायगा और तुम्हारे सम्मुख उन्नति के द्वार खुल जावेंगे। ❁❁❁

उपोद्घात

लेखकः-टी. एल. वासवानी

नाथ हमारे परिश्रम का फल तुम्हें अर्पण है, हमें नवजीवन दो! हमारे बीच उन ऋषियों को जन्म दो जो हमें विद्यारूपी धन से सम्पन्न कर सकें। -(वेद)

क्यों ?

मैं विधर्मी हूँ परन्तु मैं अनुभव करता हूँ कि मैं दयानन्द की ओर आकर्षित हो रहा हूँ, क्यों?

मैं आर्यसमाज का सभासद् नहीं पर दयानन्द का नाम मुझे प्रफुल्लित कर देता है! क्यों?

ऋषि के प्रति और मेरी अपनी आत्मा के प्रति यह अनुचित होगा यदि मैं अपने कई मत-भेदों को स्वीकार न करूं जो कि दार्शनिक, धर्मसिद्धान्त सम्बन्धी और ऐतिहासिक विषयों में हैं। कृष्ण, भक्तिवाद, क्राइस्ट, सेमेटिक मत (सेमेटिक मत से तात्पर्य यहूदीमत, ईसाईमत और इस्लाम तीनों से है, क्योंकि इन मतों का मूल यहूदी मत से है जो कि सेमेटिक जाति में उत्पन्न हुआ) सिक्खधर्म और सिक्ख गुरुओं के विषय में मेरे विचार ऋषि दयानन्द के विचारों से भिन्न हैं। उनकी वेदार्थशैली मुझे सायणाचार्य की अपेक्षा, जिसने वेद के धर्म को कर्मकाण्ड के साथ मिला दिया है, अधिक अपील करती है परन्तु ऋषि दयानन्द की भाषा और 'धर्मसिद्धान्त', पर निर्भर भाष्य प्रणाली के साथ, मैं नम्रतापूर्वक कहूंगा कि 'आलोचनात्मक वैज्ञानिक ऐतिहासिक प्रणाली' को जोड़ देना चाहिये। मेरा विश्वास है कि आर्यों के धर्मों का तुलनात्मक इतिहास वैदिक विज्ञान की छिपी ज्योति को और भी अधिक चमकायेगा। ऋषि दयानन्द के नियोग सम्बन्धी विचारों से मैं सहमत नहीं-वे मुझे प्लेटो के स्त्री पुरुष सम्बन्ध विषयक विचारों को याद दिलाते हैं। तथापि मैं इस **बाल ब्रह्मचारी** के सौन्दर्य पर मोहित हूँ। क्यों?

वर्षों के अनुभव ने मेरी श्रद्धा को कम नहीं किया किन्तु और भी गहरा कर दिया है, क्यों?

एक जाति की सबसे बड़ी सम्पत्ति क्या है? उसके अग्रेसर नेता और भविष्यद्रष्टा। उनमें से एक स्वामी दयानन्द थे। उनका मानव चरित्र ऐसा है जिस पर कोई जाति या कोई भी युग अभिमान कर सकता है। उनकी सत्यनिष्ठा को देखो! उन्हें इस बात का डर नहीं कि वे स्थिर विचार वाले न समझे जायेंगे। एमर्सन कहता है कि स्थिर विचार रखना जिसे, स्थिरता, समझा जाता है, मन्द-बुद्धि वालों का 'हौआ' है। दयानन्द सत्य की पूजा करता है जैसा कि वह उसे प्रकट होता है। वह शैवमत को वेदान्त के पक्ष में छोड़ देते हैं और फिर वेदान्त के पक्ष को सांख्य और योग के अनुसार वेदसिद्धान्त के पक्ष में छोड़ देते हैं। उन्हें विचार परिवर्त्तन करने का भय नहीं। उन्हें 'प्रकाश' के पीछे जाना है, जिधर भी वह ले जावे। एक भक्त कहता है, 'महाराज गुरुमंत्र दीजिये', वे उत्तर देते हैं, 'क्या मैंने पहले ही तुम्हें गुरुमन्त्र नहीं दे दिया? यही मेरा गुरु मन्त्र है कि **'जिसे तुम सत्य समझते हो उसमें विश्वास रक्खो और** असत्य को छोड़ **दो'** क्या सत्य की ओर संकेत करने से बढ़कर कोई धर्म हो सकता है? इस सत्य वक्ता का राजाओं का डर

नहीं। एक उच्च अधिकारी ने दयानन्द से कहा, मूर्त्तिपूजा का खण्डन मत करो महाराज, कामिश्नर प्रसन्न हो जायेंगे, वे भर्तृहरि के एक उचित श्लोक में उत्तर देते हैं–

बुद्धिमान न्याय के मार्ग से नहीं हटते। उन्हें प्रशंसा और निन्दा की परवाह नहीं। न धन की और न दरिद्रता की, चाहे वे एक वर्ष में मर जावें, चाहे युगपर्यन्त जियें।

एक उच्च अधिकारी उनसे कहता है–

'मूर्त्ति पूजा के विरोध को छोड़ कर और जो कुछ आप उपदेश देते हैं सब ठीक है, बस इस अंश को छोड़ दीजिये फिर सब आपके अनुयायी हो जायेंगे' ऋषि दयानन्द उत्तर देते हैं **'मैं सत्य को नहीं छोड़ सकता'**, वे अपने आत्मचरित में लिखते हैं–'मेरे जीवन का उद्देश्य मन वचन और कर्म से सत्य का अनुष्ठान करना है' **सत्य!** चाहे उससे मृत्यु भी हो जावे, दयानन्द के जीवन की सबसे बड़ी आकांक्षा थी। सत्य के लिये वह 15 वर्ष तक, और इससे भी अधिक, पर्वतों और मैदानों में घूमता है! साधु और संन्यासियों की खोज करता है, और 36 वर्ष की आयु में स्वामी विरजानन्द के चरणों में बैठ कर पवित्र प्राचीन ब्रह्मचर्य के नियमानुसार उनकी सेवा करता हुआ उनका शिष्य बनता है!

कुछ लोग ऋषि पर दोष लगाते हैं कि उसने कट्टर हिन्दू सिद्धान्तों का तीव्र विरोध किया, वे भूल जाते हैं कि यह सत्य के लिये प्रेम था जिसने उसे तीव्र बना दिया। 'निटशे' ने कहा है कि सारे निर्माता (नये युग के बनाने वाले) कठोर होते हैं उनका कठोर होना आवश्यक है' ऋषि ने हिन्दू समाज पर जोर से चोट पहुंचाई जिससे कि वह जाति की सेवा के लिये नये सिरे से योग्य बन सके। उन्होंने हिन्दुओं पर चोट लगाई जिससे कि वे मनुष्य जाति की सेवा के लिये अधिक मजबूत बन जावें। और ऋषि दूसरों पर उससे आधे भी कठोर न थे जितने कि स्वयं अपने ऊपर।

कुछ लोग उन्हें यह दोष देते हैं कि उनने 'मैडम ब्लैवटस्की' कर्नल आल्काट और थियासोफिकल सोसाइटी के दूसरे लोगों का साथ छोड़ दिया। परन्तु मेरे विचार में उनका पृथक् होना अनिवार्य था। ऋषि दयानन्द का पुरुष रूप ईश्वर में गहरा विश्वास था, अनन्त **सच्चिदानन्द** की, नित्य स्वयं चेतनस्वरूप आत्मा की पूजा करना दयानन्द का दृढ़ निश्चय था, उनके दार्शनिक विचार भी थियासोफी से भिन्न थे। उदाहरण के लिये वे मैडम ब्लैकटस्की के पुनर्जन्म सम्बन्धी विचारों से जो कि उनकी पुस्तक 'Isis unveiled' में निम्न प्रकार से दिये गये हैं, कदापि सहमत नहीं हो सकते थे, वे उसमें लिखती हैं–

''अब हम इस रहस्यपूर्ण पुनर्जन्म के सिद्धान्त की कुछ बातें प्रस्तुत करते हैं अर्थात् एक व्यक्ति का या यों कहना चाहिये कि उसके अध्यात्म सरल तत्व का एक ही लोक में दो बार आना प्रकृति का साधारण नियम नहीं, किन्तु यह एक अपवाद है, यदि बुद्धि का इतना विकास हो चुका है कि वह कार्यशील और विवेकयुक्त हो तो इस पृथ्वी पर पुनर्जन्म बिल्कुल नहीं होता, क्योंकि त्रिगुण मनुष्य के तीनों अंश मिल चुके हैं और मनुष्य मानववंश को स्वयं चला सकता है। परन्तु उस दशा में जबकि एक नई व्यक्ति प्रारम्भिक सरलतत्त्व की दशा से आगे नहीं निकली है अथवा जहाँ, जैसे कि एक मूर्ख के विषय में, त्रिगुणता पूरी नहीं हुई है; अमर चेतनता की चिनगारी को जो कि इस व्यक्तितत्त्व में प्रकाश डालने वाली है, फिर पृथ्वीतल पर अवतीर्ण होना पड़ता है क्योंकि वह अपने प्रथम प्रयत्न में निष्फल हुई।''

ऋषि सम्पूर्ण हृदय से एकता चाहते थे, वे कहते हैं कि "मुझे मतों के पारस्परिक झगड़ों से घृणा है क्योंकि उनके कारण वे अपने द्वेषपूर्ण भावों और भद्दे विचारों को धर्म के नाम पर प्रकट करते हैं" दयानन्द ने कहा कि 'बुराइयों का नाश करना मेरे जीवन का उद्देश्य है' परन्तु वह असत्य के साथ मेल करके बाहरी एकता को मोल लेने के लिये तैयार न थे, उनका 'कामचलाऊ' एकता स्थापित करने में विश्वास न था।

फिर इस प्रश्न के उत्तर में कि मैं क्यों दयानन्द की ओर आकर्षित हो रहा हूँ, मैं सबसे प्रथम उनकी 'यथार्थता के लिये प्रेम' और सत्य के प्रति निष्ठा की ओर संकेत करना चाहता हूँ, इस पुरुष का प्रत्येक इंच सचाई से भरपूर है। यहाँ तक कि जब वे अपनी कीर्ति की पराकाष्ठा को पहुंच गये तो भी उन्होंने कभी अपने में अमानुषिक शक्ति होने का दावा नहीं किया, उन्होंने किसी गद्दी की स्थापना नहीं की। उन्होंने अपना पूर्वनाम और जन्मस्थान बतलाने से इन्कार किया कि कहीं उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके किसी सम्बन्धी को उनका उत्तराधिकारी न बना दिया जाय। उन्होंने अपने समाज का अनियन्त्रित शासक होना स्वीकार नहीं किया, वे सचमुच उसे प्रजातन्त्र बनाना चाहते थे। उन्होंने उपदेशक होने के सिवाय कोई उपाधि स्वीकार नहीं की, उनके कुछ भक्त आर्यसमाज के कुछ मेम्बरों से परामर्श करके उनके पास जाकर प्रार्थना करते हैं कि वे समाज के **'संरक्षक'** की उपाधि को स्वीकार करें। ऋषि दयानन्द इस प्रस्ताव पर हंसते हुये कहते हैं 'आपके प्रस्ताव में 'गुरुडम' की गंध आती है जिसके नाश के लिये मैं उत्पन्न हुआ हूँ' मैं स्वयं गुरु बन कर एक नया सम्प्रदाय खड़ा नहीं करना चाहता। इस पर मुझे कनफ्यूशियस के शब्द याद आते हैं जो कि प्राचीन लोगों में विश्वास और प्रेम रखता हुआ अपने को केवल **'उनका सन्देशवाहक न कि पैगम्बर'** बतलाता है। वे लोग दयानन्द को 'परमसहायक' का पद देने का प्रस्ताव करते हैं, ऋषि दयानन्द हंसकर पूछते हैं कि 'यदि तुम मुझे परम सहायक का पद देते हो तो उस ईश्वर को क्या पद दोगे। फिर वे उनसे कहते हैं कि 'यदि चाहो तो मुझे साधारण मेम्बरों में लिख लो, मैं तुममें से एक हूँ।'

वे अपने सिद्धान्तों के भ्रांतिरहित होने का दावा नहीं करते। वे अपने अनुयाइयों को बार-2 कहते हैं कि 'सत्य की खोज करो और सत्य के पीछे चलो', वे अपनी स्वलिखित जीवनी, आत्मचरित में सत्य को छिपाते नहीं। वे अपने अपराधों को स्वीकार करते हैं। वे उस कथा का वर्णन करते हुए कि वे किस प्रकार विवाह से बचने के लिये घर से भागे और फिर कुछ समय पश्चात् उनके पिता ने उन्हें पकड़ लिया और कुल को कलंकित करने वाला कहकर धमकाया, स्वीकार करते हैं कि क्रोध से भरे पिता को देखकर वे भयभीत हो गये और उन्होंने कहा जो कि सत्य न था, कि 'पिताजी मैं स्वयं घर लौटना चाहता था' वे लौटना नहीं चाहते थे, वे फिर भाग गये और अपने को एक बड़े वृक्ष की छायादार शाखाओं में छिपा लिया कि जिससे वे फिर न पकड़े जा सकें और विवाह न हो सके, क्योंकि उनका आन्तरिक निश्चय आजन्म ब्रह्मचारी रहने का था। वे अपने आत्मचरित में एक मन्दिर में रहने का जिक्र करते हुये लिखते हैं कि यहाँ मुझे एक बुरी आदत पड़ गई, मैं भंग पीने लगा और कभी-2 उसके नशे में बेसुध हो जाता था। दयानन्द सत्य पर मरते थे वे उसे दबा नहीं सकते थे। एक दिन वे हुक्का पी रहे थे। लाला जीवनदास से जो कि वहाँ उपस्थित थे कहते हैं-'मैं हुक्का छोड़ना चाहता हूँ, मुझे दु:ख है कि मैंने अभी तक नहीं छोड़ा-मैं इसी क्षण से छोड़ता हूँ' उसके पश्चात् उन्होंने कभी हुक्का नहीं पिया।

-(शेष अगले अंक में)

गतांक से आगे-

ब्रह्मचर्य

लेखकः-पण्डित सत्यव्रत

2. आयुर्वेद वीर्य को सम्पूर्ण शरीरस्थ मानता है, पाश्चात्य विज्ञान इसे अण्डकोषों द्वारा जनित मानता है। कईयों के कथनानुसार, वीर्योत्पत्ति में यह स्थान-सम्बन्धी भेद है। परन्तु यह भेद वास्तविक भेद नहीं। पाश्चात्य पण्डित यह नहीं मानते कि वीर्य अण्डकोषों में रहता है, वे यही मानते हैं कि वीर्य के उत्पत्ति स्थान अण्डकोष हैं। मनोमन्थन के बाद वीर्य अण्डकोषों में प्रकट होता है, यह बात दोनों को सम्मत है। वीर्य का स्रवण दोनों के मतों में सम्पूर्ण शरीर में से होता है। आयुर्वेद के मुख्य सिद्धान्त के अनुसार सप्त धातुओं से बना हुआ वीर्य सरता है, पाश्चात्य आयुर्विज्ञान के अनुसार रुधिर में से वीर्य सरता है-सरता दोनों मतों में सम्पूर्ण शरीर में से है।

3. यद्यपि भारतीय आयुर्वेद में अन्तःस्राव में तथा वहिःस्राव का भाव स्पष्ट रूप से नहीं पाया जाता तथापि जहां तक हमने विचार किया है उसके आधार पर हमारी सम्मति है कि आयुर्वेद में तेज तथा ओज-शब्दों का प्रयोग अन्तःस्राव (इन्टरनल सिक्रीशन) और रेतस् तथा बीज शब्दों का प्रयोग वहिःस्राव (एक्सटरनल सिक्रीशन) के लिए किया गया है। शुक्र तथा वीर्य शब्द भीतरी तथा बाहरी, दोनों स्रावों के लिए प्रयुक्त होते हैं।

वाग्भट ने 'ओज' का निम्न वर्णन किया है-

"ओजश्च तेजो धातूनां शुक्रान्तानां परं स्मृतम्।
हृदयस्थमपि व्यापि देहस्थितिनिबन्धनम्।।
यस्य प्रवृद्धौ देहस्य तुष्टिपुष्टिफलोदयाः।
यन्नाशे नियतो नाशोयस्मिंस्तिष्ठति जीवनम्।।
निष्पद्यन्ते यतो भावा विविधा देहसंश्रयाः।
उत्साहप्रतिभार्धयैलावण्यसुकमारताः।। "

अर्थात् ओज सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है, देह की स्थिति का कारण है। ओज के बढ़ने से तुष्टि, पुष्टि तथा बल का उदय होता है, ओज के नष्ट हो जाने से यह सब कुछ नष्ट हो जाता है। ओज ही से उत्साह, धैर्य, लावण्य और सुकुमारता आदि नानाविध भाव प्रकट होते हैं।

यह वर्णन अन्तःस्राव के विषय में लिखे गये पाश्चात्य आयुर्विद्या के सब वर्णनों से टक्कर खाता है। मैकफैडन महोदय 'इन्टरनल सिक्रीशन' अन्तःस्राव के विषय में लिखते हैं-

"इन ग्रन्थियों से निकली हुई एक-2 बूँद उत्पन्न होते ही शरीर में खप जाती है। इसका परिणाम अनवरत उत्साह वृद्धि तथा स्वास्थ्य है, जो बचपन में विशेष रूप से दीख पड़ता है।"

जैसा ऊपर दर्शाया गया है अन्त:स्रव के विषय में वाग्भट तथा मैकफैडन के वर्णनों में कोई भेद नहीं। वहि:स्राव पर पूर्वीय तथा पाश्चात्य आयुर्विज्ञान की सम्मतियों में कुछ भेद अवश्य है परन्तु बहि:स्राव की सत्ता को आयुर्वेद में स्वीकार अवश्य किया गया है।

भाव प्रकाश में लिखा है–

"शुक्रं सौम्यं सितं स्निग्धं बलपुष्टिकरं स्मृतम्।
गर्भवीजं वपु:सारी जीवस्याश्रय उत्तम:।। 237।।"

अर्थात् वीर्य सोमात्मक, श्वेत, स्निग्ध, बल और पुष्टिकारक, गर्भ का बीज है, देह का सार रूप और जीव का उत्तम आश्रयरूप है। वीर्य का यह वर्णन किसी भी पाश्चात्य लेखक के वहि:स्राव 'एक्सटरनल सिक्रीशन' के वर्णन से अक्षरश: मिलता है।

4. हाँ–'वहि:स्राव' के स्वरूप के विषय में दोनों विज्ञानों में अत्यन्त सम्मति–भेद है। आयुर्वेद में वहि:स्राव के लिए शुक्र–कीट (स्पर्मैटोजोआ) का शब्द नहीं पाया जाता, पाश्चात्य–विज्ञान में पाया जाता है, आयुर्वेद में शुक्र, एतावन्मात्र शब्द का प्रयोग होता है।

अण्डकोषों के बहि:स्राव के विषय में दो कल्पनायें हैं। आयुर्वेद के कथनानुसार शुक्र ही वहि:स्राव है, पाश्चात्य आयुर्विज्ञों के अनुसार शुक्र–कीट बहि:स्राव है। स्मरण रखना चाहिए कि आयुर्वेद ने शुक्र को वहि:स्राव कहते हुए शुक्र–कीट से इन्कार नहीं किया। उस शुक्र का नाम यदि शुक्र–कीट रखा जा सके तो आयुर्वेद को कोई आपत्ति नहीं।

परन्तु क्या वहि:स्राव (शुक्र) का नाम शुक्र–कीट रखा जा सकता है?

हमारी सम्मति में उत्पादक–वीर्य का नाम शुक्र–कीट रखना अनुचित है। क्योंकि उत्पादक–वीर्य में गति होती है; वह चलता फिरता है, अत: उसे पाश्चात्य आयुर्विज्ञों ने कीट का नाम दे दिया है–वास्तव में वह शुक्र ही है। भारतीय आयुर्वेद के साथ अध्यात्मशास्त्र भी मिला हुआ है। यदि शुक्र को शुक्र–कीट का नाम दे दिया जाय तो उनमें मनुष्य से पृथक् चेतनता मानने का भाव झलकने लगेगा। यह बात भारतीय अध्यात्मशास्त्र स्वीकार नहीं करता। अत: आयुर्वेद में शुक्र को शुक्र कीट का नाम नहीं दिया है। उन्हें 'कीट' का नाम क्यों दिया जाय? उनकी गति का कारण उनकी पृथक् चेतनता नहीं है। शुक्र–कीटों की गति अथवा चेतनता मनुष्य के मस्तिष्क की गति अथवा चेतनता से उत्पन्न होती है अत: उन्हें यथार्थ में 'शुक्र' नाम ही देना चाहिये, 'शुक्र–कीट' नहीं। हां व्यवहार के लिए यदि उन्हें 'शुक्र–कीट' कह दिया जाय तो इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं दीखती।

3–तीसरा विचार

हमने अभी कहा है कि 'उत्पादक–वीर्य' की गति का कारण मस्तिष्क है, 'उत्पादक–वीर्य' की 'पृथक् चेतनता' नहीं। यह कथन हमें वीर्य के स्वरूप के सम्बन्ध में तीसरे विचार की तरफ ले आता है। आयुर्वेद तथा पाश्चात्य आयुर्विज्ञान के अतिरिक्त वीर्य के स्वरूप के विषय में एक तीसरा विचार है

जिसका उल्लेख करना अत्यन्त आवश्यक है।

कई विचारकों का कथन है कि 'उत्पादक- वीर्य' (स्पर्मैटोजोआ) की उत्पत्ति रुधिर अथवा अण्डकोषों से नहीं बल्कि सीधे मस्तिष्क से होती है। उनका कथन है कि 'वीर्य का नाश मस्तिष्क का नाश है क्योंकि वीर्य तथा मस्तिष्क दोनों एक ही पदार्थ है।'' इसमें सन्देह नहीं कि वीर्य तथा मस्तिष्क को बनाने वाले रासायनिक पदार्थ एक ही है। दोनों की तुलना करने पर उनमें बहुत ही थोड़ा अन्तर प्रतीत हुआ है। इस विषय पर गहरे अन्वेषण की आवश्यकता है। यदि रसायन-शास्त्र से सिद्ध हो जाय कि 'उत्पादक-वीर्य' तथा 'मस्तिष्क' की रचना में कोई भेद नहीं तो ब्रह्मचर्य के लिए एक अकाट्य युक्ति तैयार हो जाय। हम यहां पर डाक्टरों तथा रसायन-शास्त्र के विद्यार्थियों को संकेत करना चाहते हैं कि यदि वे इस विषय पर अधिक मनन कर कुछ क्रियात्मक विचारों तक पहुंच सकें तो बहुत लाभ हो।

इस सिद्धान्त के सबसे प्रबल पोषक अमेरिका के प्रसिद्ध डॉ0 एन्ड्रू जैक्सन डेविस है। अपनी पुस्तक 'ऐन्सर्स टु एवररिकरिंग क्रेश्चन्स फ्राम दि पीपल' के 293 पृष्ठ पर वे लिखते हैं।

''कई शरीर-शास्त्रियों ने यह भ्रम मूलक विचार फैला दिया है कि वीर्य की उत्पत्ति रुधिर से होती है। इस सिद्धान्त से बुद्धिमान् व्यभिचारी लोग खूब फायदा उठाते हैं। वे कहते हैं कि यत: रुधिर से ही वीर्य ने बनकर अण्ड-कोषों द्वारा प्रकट होना है अत: वे वीर्य का दुरुपयोग करते हुए भी खा पी कर उसकी कमी को पूरा कर सकते हैं। वे लोग कुछ नहीं जानते। वास्तव में सच्चाई यह है कि 'उत्पादक-वीर्य', 'वीर्य-कीट' अथवा 'स्पर्मैटोजोआ की उत्पत्ति मस्तिष्क से होती है और अन्य द्रवों के साथ मिल कर बंद अण्डकोषों में वहि:स्राव के रूप में प्रकट होता है।

''उत्पत्ति का कार्य जीवन के सब कार्यों की अपेक्षा अधिक बड़ा और थकाने वाला कार्य है। इस में मनुष्य की प्रत्येक शक्ति प्रत्येक भाव तथा शरीर और मन का हरेक भाग हिस्सा लेता है मस्तिष्क से उत्पन्न हुआ प्रत्येक 'शुक्र-कीट' यदि बाहर निकलता है तो मस्तिष्क के उस अंश का पूरा नाश समझना चाहिये।

शारीरिक परिश्रम, मानसिक कार्य तथा किसी एक काम की तरफ लगातार लगे रहने से 'वीर्य-कीट' अथवा 'स्पर्मैटोजोआ' मस्तिष्क में ही खप जाता है। यदि ' वीर्य-कीट' को केवल उत्पत्ति के लिए काम में लाया जाए तो मनुष्य की शारीरिक तथा मानसिक शक्तियां नष्ट होने से बच जाती है।

''इसलिए स्मरण रखना चाहिए कि उत्पादक पदार्थों का उचित मात्रा से अधिक खर्च अथवा प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करना मस्तिष्क पर अत्याचार करना है। ऐसा करने से दिमाग की सब तरह की बीमारियों के होने का पूरा निश्चय है। जिन लोगों पर बच्चों की रक्षा की जिम्मेवारी है उन्हें इन बातों को कभी न भूलना चाहिये।''

मस्तिष्क तथा वीर्य में कोई खास सम्बन्ध अवश्य है। वीर्य नाश का दिमाग पर सीधा असर होता है, यह किसी से छिपा नहीं। डॉ0 कोवन यह मानते हैं कि दिमाग से एक द्रव उत्पन्न होकर उस तरफ को

जिस तरफ मनुष्य के मनोभाव केन्द्रित होते हैं बहने लगता है। डॉ0 हाल का कथन है कि अण्ड-कोषों से एक पदार्थ उत्पन्न होकर मस्तिष्क में पहुंचता है जहां से वह यौवनावस्था में प्रकट होने वाले सब शारीरिक तथा मानसिक परिवर्तनों को प्रादुर्भूत करता है। डॉ0 ब्लौश कहते हैं कि मस्तिष्क तथा वीर्य का पारस्परिक सम्बन्ध देर से माना जा रहा है। यहां तक कि शैलिंग की 'नैचुरल फिलासफी' में मस्तिष्क के लिए 'अण्डकोषों के रस से बना हुआ दिमाग'-यह नाम पाया जाता है।

'वीर्य के स्वरूप' सम्बन्ध में हमने तीनों मुख्य विचारों का उल्लेख इसलिए कर दिया है ताकि प्रत्येक व्यक्ति इस बात को भली प्रकार समझले कि वीर्य-रक्षा किये बिना उसका कोई निस्तार नहीं। तीनों विचार तत्वत: एक ही हैं। किसी भी दृष्टि से क्यों न देखा जाय, वीर्य-रक्षा करना जीवन-रक्षा के लिए आवश्यक है, अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है। हमारे नव-युवक पाश्चात्य विचारों के पर्दे के पीछे अपनी कमजोरियों को छिपाने का भरसक प्रयत्न करते हैं, जानबूझ कर अपने को धोखे में डालते है परन्तु उन्हें अपनी आत्मा की आवाज सुनकर अवश्यम्भावी नाश से बचने की फिक्र करनी चाहिये। पश्चिमीय विज्ञान ने अभी तक जो कुछ पता लगाया है वह ब्रह्मचर्य के हक में ही जाता है। उसका दुरुपयोग करने की कोशिश न कर उससे शिक्षा लेनी चाहिये। डॉ0 स्टाल ने अपनी पुस्तक 'ह्वाट ए यंग हसबैण्ड औट टु नो' में जीवन-शास्त्र की दृष्टि से बहुत ही उत्तम लिखा है-

''जो लोग वृक्षों की रक्षा करना जानते हैं उन्हें यह भी मालूम है कि वृक्षों के सौन्दर्य को कायम रखने के लिए आवश्यक है कि उनके फलोत्पादन के संमय को जितना हो सके उतना दूर करने का प्रयत्न किया जाय। जब हम उनके बीज न बनने देंगे तब तक वे हरे भरे, लहलहाते और फूलों से लदे रहेंगे। पुष्प के बीज बनने की सम्भावना को दूर करदो, तुम देखोगे कि वह फूल पहले की अपेक्षा कई घण्टे अधिक देर तक खिला रहता है। कीड़ों का भी यही हाल है। देखा गया है कि जब उनके वीर्य नष्ट होने की सम्भावना को रोक दिया जाय तब वे अपनी जाति के कीड़ों की अपेक्षा बहुत अधिक जीते हैं। एक तितली पर परीक्षण करके देखा गया है कि जहां जननशक्ति का उपयोग करने वाली तितलियां कुछ ही दिन की मेहमान होती हैं वहाँ वह तितली दो साल से भी ऊपर जीती रही।''

ऐसे परीक्षणों से वीर्य-रक्षा का जीवन के लिए महत्व अखण्डित रूप से सिद्ध है इसमें क्षण-भर के लिए भी सन्देह नहीं करना चाहिये।

-(शेष अगले अंक में)

शीघ्र प्रकाशित होने वाली पुस्तकें

श्रीमद् भगवद् गीता (एक सरल चिन्तन)	**प्रेस में**
चार मित्रों की बातें	**प्रेस में**
गृहस्थ जीवन रहस्य	**प्रेस में**
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	**प्रेस में**

हाथों में संगठन संस्थायें सभी कुछ चली गयीं। उन लोगों में जो संस्कार विहीन थे स्वार्थ की प्रवृत्ति प्रबल हो गयी। ऐसे ज्ञान शून्य स्वार्थी लोगों ने आर्यसमाज के परोपकारी अभियान को भारी हानि पहुँचायी।

वर्त्तमान काल मेंऐसे ही नीच लोगों का सभाओं में संगठनों में बोल-वाला है। पूर्वजों के द्वारा स्थापित किए गये सामाजिक प्रतिष्ठा के बल पर वे लोग समाज का भरपूर दुरुपयोग कर रहे हैं। स्वाध्याय की प्रवृत्ति समाप्त होने की वजह से सिद्धान्तों के ज्ञान से शून्य स्वार्थी पदाधिकारी ही आर्यसमाज की अकूत सम्पत्ति का प्रयोग मात्र अपने ऐशो आराम के लिए कर रहे हैं। प्रचारकों ने पदाधिकारियों में मिलकर आर्य-समाजों की सम्पत्ति को लूटने का कुचक्र चला रखा है। कुछ प्रतिष्ठित गुरुकुलों की प्रतिष्ठा का सहारा लेकर कुछ धूर्त्त लोगों ने जगह-जगह सांसारिक सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए गुरुकुलों का सहारा ले रखा है। कहीं से भी गरीब बच्चों को ले आते हैं, उनके माता-पिता को बहका देते हैं, शिक्षा के नाम पर। फिर उन बच्चों के माध्यम से जगह-जगह जाकर चन्दा करते हैं। और प्रबन्धक व आचार्य आपस में बाँटकर रकम हजम कर जाते हैं। उनकी इस प्रवृत्ति से पुराने गुरुकुल जो वैदिक विद्वानों को तैयार करते हैं आज समाप्त हो गये हैं। गुरुकुलों की इस दुर्दशा को देखकर कोई भी व्यक्ति अपनी प्रतिभाशाली बच्चे को भेजने को तैयार नहीं होता। शहरी क्षेत्रों में आर्यसमाज मन्दिर मुख्य स्थानों पर स्थापित हैं उनमें दुकानों के किराये और फर्जी विवाहों के माध्यम से भारी धन आता है। जिसे हजम करने के लिए पदाधिकारी कुण्डली मारकर बैठे हैं। किसी निष्ठावान कार्यकर्त्ता को प्रवेश नहीं देते हैं। आर्यसमाज के द्वारा होने वाली भारी आय को खाने के लिए वेद प्रचार के नाम से कार्यक्रम करवाते हैं। धन के लोभी ये प्रचारक वहाँ जाते हैं, पदाधिकारी दस-पाँच आदमी इधर-उधर से इकट्ठे कर लेते हैं इन्हीं के बीच में वेद प्रचार के नाम से उल्टे-सीधे चुटकुले सुनाकर मनोरंजन करते हैं। पदाधिकारियों की भांड़ के समान प्रचारक स्तुति कर मोटी दक्षिणा लेकर चले जाते हैं।

आजकल स्वाध्याय शून्य तथाकथित स्वार्थी आर्यसमाजियों की हालत इतनी दयनीय है कि एक जगह हमने मंत्री से पूछा कि सत्यार्थ प्रकाश का लेखक कौन है? तो वह हाथ जोड़कर कहने लगे कि महाराज जी हम इतने विद्वान नहीं हैं जो इस बात का उत्तर दे सकें। बड़ा दुर्भाग्य है कि ऐसे लोग वेद प्रचार के कर्त्ताधर्त्ता बने बैठे हैं। प्रचारकों का भी वही हाल है पाखण्ड का पूरा बोलवाला दिखाई देता है। सन्ध्या, हवन आदि के विषय में उनका कोई चिन्तन है नहीं। इधर-उधर के कुछ प्रवचन रट लेते हैं। सर्वत्र उन्हें ही सुनाते फिरते हैं। वेदांग का एक भाग भी कभी देखा नहीं और अपने को वैदिक प्रवक्ता लिखकर आत्म प्रवंचना करते हैं। आर्यसमाज के जड़बुद्धि अधिकारी भी उन्हें विज्ञापनों और संचालन के समय में वेदों का प्रकाण्ड विद्वान लिखते और बताते है। नई-नई महिला उपदेशिकायें तैयार हो रही हैं एक भी वेद मंत्र का ठीक-ठीक उच्चारण करना नहीं आता है। पर उनके आगे वेद विदुषी लिखा जाता है। आर्यसमाज का पवित्र मंच जिस पर कभी वीतराग महर्षि दयानन्द जैसे पवित्र आत्मा बैठे थे। उसी पर तथाकथित वेद विदुषी महिलायें दिन में नाना प्रकार के भेष बदलकर तितलियों की तरह आती हैं और आध्यात्मिकता के उपदेश करती हैं। भजन गाने वाले नवोदित वैदिक प्रवक्ता सारा समय अपने साज श्रृंगार में ही लगा देते हैं। नौटंकीबाजों की तरह थोड़ी देर के लिए अभिनय किया और पुनः नैपथ्य में जाकर क्या करते हैं ये परमात्मा ही जाने। जनता से चन्दा लेकर दिए, पैसे की ऐशो आराम के द्वारा धूल उड़ा देते हैं। इन सारी परिस्थितियों को देखकर ऐसा लगता है कुछ काल में आर्यसमाज रुपी कल्पवृक्ष को ये लोग घुन की तरह चाट जाऐंगे। फिर बिना आर्यसमाज के संसार अज्ञान से आवृत सर्वनाश की तरफ चला जाएगा। पर इन तथाकथित धर्म के ध्वजवाहक पापियों को कौन समझाये? कि तुम्हारे इन कुकृत्यों से संसार की महती हानि तो होगी ही पर तुम भी विनाश की आग में जल मरोगे। आज सर्वत्र यह दशा देखकर ऐसा लगता है कि यह वेद ज्ञान रूपी संसार का पथ प्रदर्शन करने वाली मशाल इन्हीं अन्धे लोगों के हाथ में पहुंच गई है। आगे परमात्मा जाने क्या होगा?

पुनश्च निष्ठावान तपस्वी पवित्र आत्मा कार्यकर्त्ता और विद्वानों से यही निवेदन है कि इस विषय परिस्थिति में अपने पवित्र व्यक्तित्व के बल पर जन-जागृति करके और घोर कठिनाइयाँ सहकर भी इन धूर्त्तों का सामाजिक बहिष्कार करें और करवायें। यह महापुण्य का कार्य होगा और उस पवित्र आत्मा महर्षि दयानन्द का ऋण तभी उतर सकेगा। संसार के कल्याण का मार्ग भी प्रशस्थ होगा। ❁❁❁

'तपोभूमि' नवम्बर 2015 R.N.I. No. 2321/57 रजि. सं. MTR नं. 04/2013-15

ऋग्वेद !! ओ३म् !! यजुर्वेद

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

श्री विरजानन्द ट्रस्ट, वेदमन्दिर–मथुरा में

चतुर्वेद पारायण यज्ञ

दिनांक 6 दिसम्बर 2015 से 25 दिसम्बर 2015 तक

सभी यज्ञ प्रेमीजनों को सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी आप सभी की भावना के अनुसार चतुर्वेद–पारायण यज्ञ आपके अपने गुरूकुल वेद मन्दिर, मथुरा में 6 दिसम्बर 2015 से रखा जा रहा है जिसकी पूर्ण आहुति 25 दिसम्बर 2015 को होगी। अत: आप सपरिवार इस यज्ञ–तीर्थ में आमन्त्रित हैं सपरिवार पधारकर इस पुण्य कार्य में सहभागी बनें। यज्ञ का समय प्रतिदिन प्रात: 8 बजे से 11 बजे तक और अपराह्न 2 बजे से सायं 5 बजे तक रहेगा। आप किसी भी सत्र में यजमान बनने का सौभाग्य प्राप्त कर सकते हैं।

यजमान बनने के इच्छुक जन पहले ही अपना समय निश्चित कर लें। दिनांक और सत्र लिखकर अवश्य वेद मन्दिर, मथुरा के पते पर भेज दें या फिर दूरभाष द्वारा सूचित कर दें।

निवेदक

(अध्यक्ष)	(मंत्री)	(अधिष्ठाता)
डॉ0 सत्यप्रकाश अग्रवाल	बृजभूषण अग्रवाल	आचार्य स्वदेश 9456811519

सामवेद अथर्ववेद

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2015 के लिये वार्षिक शुल्क 150/– रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 1500/– भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक–पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

....

....

....

....

.... पिन कोड ....

पत्र व्यवहार का पता :–
व्यवस्थापक – कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर– गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग
(आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास,
मथुरा (उ० प्र०) 281003
फोन (0565) 2406431
मोबा. 9759804182

स्वामी, प्रकाशक, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए रमेश प्रिन्टिग प्रेस, पंचवटी, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित

Yogendra # 9927136600